RNI:UPHIN/2016/46009
RNP/SHN/18-2019-21

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ
ब्रह्मज्ञान ही अमृत है।
सरसावा

तारतम मंजरी

वर्ष ४ अंक १० अक्टूबर २०१६ बुद्धजी शाका ३४१ विक्रम सवंत २०७६ पृष्ठ संख्या ३२

ब्रह्मज्ञान ही अमृत है

प्रेम ही जीवन है

आध्यात्मिक उन्नति के आठ सूत्र

१. नियमित ध्यान
२. नियमित स्वाध्याय
३. सात्विक अल्पाहार
४. प्रबल पुरुषार्थ
५. परब्रह्म के प्रति समर्पण एवं गुरुजनों के कथनों के प्रति श्रद्धा
६. शिष्टाचार
७. दृढ़ संकल्प
८. अटूट आत्मविश्वास

स्वत्वाधिकारी
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ
नकुड रोड, सरसावा, जिला-सहारनपुर, उ.प्र.

Email : shriprannathgyanpeeth@ gmail.com Youtube: SPJIN Website: www. spjin.org
Twitter : @Raajan Swami Whats App: +917533876060 ;

अनुक्रमणिका

1.	सम्पादकीय : अभी बीतक पार्ट–2 बाकी है	कृष्ण कुमार कालड़ा	1
2.	मृत्यु भय से मुक्त होने के उपाय	आचार्य सुभाष	2
3.	दुख से मुक्ति	रुपक निजानंदी	6
4.	बीतक समीक्षा–2 : मूर्ति/जड़ पूजा अभिशाप है	कृष्ण कुमार कालड़ा	9
5.	आत्मचिन्तन – 2	दीप्ति, सरसावा	12
6.	रगं महल : पांचवी भोम की शोभा	किरन प्रणामी	15
7.	आत्मा और परमात्मा का मिलन	गीता ठाकुर	17
8.	स्वप्निक ब्रह्माण्ड और निजघर परमधाम	विनोद प्रसाद तिम्सिना	20
9.	षटऋतु	बब्बू	22
10.	वृक्ष पर बैठे मुर्गे की चोंच में मिट्टी	बबली	25
11.	कलियुग का बल	ज्योति	28

'तारतम मंजरी के पाठकों से निवेदन'

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा से 'मासिक प्रकाशित होनेवाली " तारतम मंजरी' " पत्रिका वेवसाईट के साथ साथ व्हाट्सएप, फेसबुक के माध्यम से आप सभी के हाथों तक पहुचाने का प्रयास किया जाता है। अब नयी योजना के अन्तर्गत 'व्हाट्सएप में एक ग्रुप बनाई जायेगी, उस ग्रुप में केवल "तारतम मंजरी" ही प्रत्येक महीने डाली जायेगी'। सभी पाठकों से निवेदन है कि ग्रुप में जुडने के लियें आप 'अपना व्हाट्सएप नम्बर व्यक्तिगत रुप से या ईमेल के माध्यम से पूरा नाम,पता सहित भेजें'।

E-mail: tartammanjari@gmail.com
सम्पर्क सूत्र :–
+91 9725389547 (आचार्य सुभाष जी)
+91 9314193262 (जुनेजा बाबूजी)

सदस्यता शुल्क

भारत में	विदेश में
वार्षिक 130 रू.	650 रू.
आजीवन 1200 रू.	.....

लेख में प्रगट किये गये विचार लेखक के व्यक्तिगत विचार हैं इनके प्रति सम्पादक, प्रकाशक उत्तरदायी नहीं है।
किसी भी विवाद की स्थिति में न्यायक्षेत्र सहारनपुर होगा।

प्रकाशन कार्यालय
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा, नकुड़ रोड, जिला–सहारनपुर (उ.प्र.)
पिन कोड–247232
सम्पर्क सूत्र–8650851010

Youtube:SPJIN
वेबसाईट :– www.spjin.org
ई मेल :– shriprannathgyanpeeth@gmail.co

सम्पादकीय

अभी बीतक पार्ट–2 बाकी है

अभी हमने पिछले दिनों बीतक चर्चा का श्रवण किया। ऐसा हम पिछले सैकड़ों वर्षों से करते आ रहे हैं। हमारे प्रायः सभी छोटे बड़े मंदिरों इत्यादि में इस चर्चा का नियमित रूप से आयोजन किया जाता है।

यहां प्रश्न यह उठता है कि आखिर बीतक का तात्पर्य करता है? सामान्यतः इसे बीती हुई बातों से लिया जाता है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। न ही यह कोई ऐतिहासिक वृतांत है और न ही यह किसी (देवचन्द्रजी, प्राणनाथ जी, छत्रसाल जी) की जीवन गाथा है। वस्तुतः हम ब्रह्मात्माओ का अक्षरातीत श्री राज जी से अनन्त काल से जो सम्बंध है – ब्रज, रास और उसके पश्चात इस जागनी ब्रह्माड में चौथे और पांचवें दिन की लीला में जो कुछ हुआ, वर्तमान में छठे दिन की लीला में जो कुछ हो रहा है तथा सातवें दिन की लीला में जो कुछ होना है, यह सम्पूर्ण घटना क्रम बीतक कहलाता है।

इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि वर्तमान में जो बीतक साहब है तथा जिसकी हर वर्ष चर्चा होती है, उसमें केवल चौथे और पांचवें दिन की लीला का वर्णन है। इससे पूर्व हुई ब्रज लीला का वर्णन भागवत में तथा रास लीला का वर्णन रास ग्रंथ में हो चुका है। ऐसे में छठे और सातवें दिन की लीला का वर्णन होना अभी बाकी है जिसके लिए बीतक पार्ट 2 की रचना होनी है। इसके लिए देखते हैं धामधनी किसे लालदास जी बना कर यह सेवा सौंपते हैं परंतु यह तो निश्चित है कि बीतक साहब के इस दूसरे भाग में प्रमुख रूप से हम सुन्दरसाथ का ही उल्लेख होगा क्योंकि छठा दिन मोमिनों का है। हमने राज जी से किये अपने वायदे को कितना निभाया अर्थात क्या हम सही मायने में जाग्रत हुए हैं तथा हमने परब्रह्म अक्षरातीत तथा उनके ब्रह्म ज्ञान का कितना प्रचार–प्रसार किया। सुन्दर साथ जी, यह मत भूलिए कि आज भी जहां एक तरफ बिहारी जी जैसे लोग हैं जिन्होंने ताउम्र श्री जी से मुनकरी की तो दूसरी तरफ लालदास जी जैसे परमहंस हैं जिन्होंने श्री जी के अन्दर बैठे मूल स्वरूप की पहचान कर उनके चरणों में अपना सर्वस्व सौंप दिया।

हम सुन्दरसाथ के साथ समस्या यह है कि हम आज भी बाहरी तन को देखते हैं। राज जी हम सुन्दरसाथ के धाम हृदय में विराजमान हैं और जिससे जो सेवा लेनी है वह उन्हीं की प्रेरणा से ही होता । परन्तु यह दुःख की बात है कि हमारे पास परमधाम का ज्ञान होने के पश्चात् भी हम मूर्ति/जड़ पूजा और व्यक्तिवाद/स्थानवाद/ गादीवाद के भ्रमजाल में फंसे हुए है। न ही हम कर्मकाण्ड की दीवारों को लांघ पा रहे हैं। मेले–भण्डारो, मन्दिरों के निर्माण/ नवीनीकरण, शोभायात्राओं आदि जैसे कार्यों पर पानी की तरह पैसा बहा रहे हैं जिससे कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है। इसके स्थान पर यदि हम आध्यात्मिक शिक्षा केंद्रों की स्थापना करें तो वहां से न केवल वाणी के प्रचारक निकलेंगें बल्कि वाणी सम्बंधी साहित्य का भी प्रकाशन हो पायेगा।

अतः सुन्दरसाथ जी, यदि आपने बीतक–२ में श्री जी पर कुर्बान होने वालों की सूची में अपना नाम दर्ज कराना है तो अभी से सावधान हो जाइए। अब चूंकि वाणी आपके पास है, अतः कोई बहाना स्वीकार्य नहीं होगा। विरह, प्रेम, श्रद्धा, समर्पण, चितवनि एवं सेवा को अपने हथियार बनाईये, आप अपने लक्ष्य में अवश्य सफल होंगे। प्रणाम जी।

कृष्ण कुमार कालड़ा, जयपुर

मृत्यु भय से मुक्त होने के उपाय

आचार्य सुभाष, श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा

संसार में ऐसा कौन–सा प्राणी है जिसे मृत्यु से भय न लगता हो?यद्यपि प्रकट में मनुष्य मृत्यु के लक्षणों से अनभिज्ञ हैं और नहीं जानते कि मृत्यु क्या वस्तु है, परन्तु क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जिस पदार्थ के गुणों को हम न जानें उससे हमें भय लगे?क्योंकि भय सर्वदा जानी हुई वस्तु से होता है चाहे उसका ज्ञान अनुमान से हो वा प्रत्यक्ष से, परन्तु प्रत्येक दशा में भय होता भयंकर वस्तु के ज्ञान से ही है। मृत्यु का भय ऐसा नहीं जो केवल दीन और निर्बलों ही को दुःख देता हो, किन्तु बड़े–बड़े शूरवीर राजा–महाराजा मृत्यु के नाम से काँपते हैं। अब प्रश्न यह है कि मृत्यु है क्या?इसके उत्तर में छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है –

यस्य यदेकां शाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्यति तृतीयां जहात्यथ सा शुष्यति सर्वं जहाति सर्वः शुष्यत्येवमेव खलु सोम्य विद्धीति होवाच? –छां० खं० ६।११।२

अर्थ–जब इस शरीर के एक भाग को जीव छोड़ देता है तो वह भाग सूख जाता है, जब दूसरे को छोड़ देता है तो वह सूख जाता है, जब तीसरे को छोड़ देता है तो वह भी सूख जाता है और जब सम्पूर्ण को छोड़ देता है तो समस्त ही सूख जाता है। तथा

जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियत इति?–छां० ६।११।३

अर्थ–जीव के देह से पृथक् हो जाने पर यह देह मर जाती है, जीव नहीं मरता। उपर्युक्त उपनिषद्–वाक्य से विदित होता है कि जीव और देह के वियोग का नाम मृत्यु है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है–क्या कारण है कि जीव और देह के वियोग से मनुष्य को दुख प्रतीत होता है?क्या जीव और देह का स्वाभाविक संयोग है जिसके टूटने से जीव को हानि पहुँचती है या देह की जीव को किसी कार्य के लिए आवश्यकता है जिसके न होने से जीव को कष्ट होता है?उपनिषदों में जो जीव और देह का सम्बन्ध बताया है उससे यह प्रश्न भी हल हो जाता है। देखो कठोपनिषद्

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेवतु।
बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।

अर्थ–आत्मा को रथ में बैठनेवाला स्वामी और देह को रथ समझना चाहिए। इन्द्रियाँ इस रथ के घोड़े और मन घोड़ों की लगाम है, बुद्धि सारथि है और जितने विषय हैं ये इस गाड़ी और घोड़ों के चलने के मार्ग हैं।

उपनिषत्कार के अलङ्कार से यह बात सिद्ध हो गई कि ये इन्द्रियाँ इस आत्मा को ज्ञान की मञ्जिल (उद्देश्य) पर पहुँचानेवाले घोड़े और शरीर गाड़ी है। अब यह प्रश्न उठता है कि यदि देह को सचमुच गाडी मान लें और आत्मा को यात्री, तो किस दशा में गाड़ी के त्यागने पर कष्ट होता है?जब विचार करते हैं तो पता चलता है कि यात्री को जो प्रेम गाड़ी से होता है वह स्वाभाविक नहीं होता, वरन् प्रयोजन–सिद्धि के कारण होता है। यात्री यह समझकर कि गाडी द्वारा आनन्दपूर्वक अपने नियत स्थान की ओर जा सकता है और बिना गाड़ी के नहीं, गाडी की मरम्मत आदि का ध्यान रखता है, उसकी सफाई आदि का यत्न करता है और उस समय तक ही उसमें चढ़ा रहना चाहता है जिस समय तक अपनी यात्रा को पूर्ण नहीं कर लेता।

जहाँ अपने नियत स्थान पर पहुँच जाता है वहीं गाड़ी को स्वयं त्याग देता है। प्रत्येक गाड़ी का स्वामी अपनी गाड़ी से इसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए प्रेम रखता है। कतिपय मनुष्यों को यह शंका होगी कि बहुधा मनुष्य गाड़ी को बुरा समझकर मार्ग में छोड़ देते हैं। इसका समाधान यह है कि जिस समय यात्री को उस गाड़ी से उत्तम गाड़ी मिलने की आशा हो तो वह यह सोचकर कि इस गाड़ी के बदले दूसरी गाड़ी में चढ़कर मैं अपनी मञ्जिल (उद्देश्य) पर शीघ्र पहुँच जाऊँगा, पहली गाड़ी को त्यागने के लिए उद्यत हो जाता है, परन्तु यदि उसे दूसरी गाड़ी के मिलने की आशा न हो तो उसे गाड़ी का त्यागना कष्टदायक होता है। इस बात का आप प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं, क्योंकि जिस समय हम रेल में बैठकर कहीं जाते हैं तो मञ्जिल आने के पूर्व ही गाड़ी को छोड़ने का प्रबन्ध करते हैं, अपना सामान बटोरते हैं और जहाँ स्टेशन आया झट उतरने को लपकते हैं। यदि कुंजी आदि लगी होने के कारण गाड़ी छोड़ने में कुछ देर हो तो चित्त बहुत ही बिगड़ जाता है।

कभी बाबू को पुकारते हैं और कभी कुली से कहते हैं कुंजी लाना, और यदि पाँच–सात मिनट भी देर हो जाए तो बस पिछले द्वार से ही दौड़ पड़ते हैं परन्तु यदि कोई मनुष्य उद्देश्य के बीच में ही हमें उतार दे तो उससे लड़ने लगते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि जिस स्थान पर पहुँचने के लिए यह शरीर दिया गया है यदि उस स्थान की प्राप्ति हो जाए तो शरीर के नष्ट होने में कष्ट नहीं होता। इस बात का प्रमाण उन लोगों की मृत्यु से भी मिलता है, जिन्होंने कि ईश्वर–भक्ति को अपने जीवन का उद्देश्य बना रक्खा है।

जिन्होंने गंगा के किनारे घूमनेवाले स्वामी पूर्णाश्रम जी के जीवन और मृत्यु को देखा है, उन्हें पूर्ण विश्वास होगा कि इस प्रकार के जीवन्मुक्त ईश्वर के भक्त मृत्यु का तनिक भी भय नहीं रखते, किन्तु वे तो मृत्यु से प्रसन्न होते हैं और उनको मृत्यु से भय भी क्या! कतिपय मनुष्य यह आक्षेप करते हैं कि जब मृत्यु की इच्छा कोई नहीं करता, तो जीवन्मुक्त जो सबसे अधिक ज्ञानी है मृत्यु की इच्छा क्यों करते हैं?इसका उत्तर यह है कि वे इस मनुष्य–शरीर को कर्त्तव्य और भोक्तव्य योनि अर्थात् करने में स्वतन्त्र तथा भोगने में परतन्त्र देह समझते हैं। कर्त्तव्य के विषय में वे इस शरीर को संसार–सागर से पार होने के लिए एक जलयान समझते हैं।

जिस प्रकार मनुष्य नौका में बैठकर नदी से पार चला जाता है और यावत् वह नदी से पार नहीं होता तावत् नाव के छूटने में दुःख मानता है, परन्तु जहाँ नदी से पार हुआ कि तुरन्त ही नौका पर से उतर जाता है। उस समय उसे नाव में बैठना

भयंकर प्रतीत होता है। कारण यह है कि यावत् वह नौका में बैठा है तावत् नदी पार नहीं हुआ, वरन् नदी के भीतर है। ऐसी अवस्था में थोड़ा बहुत भय बना रहता है कि कहीं ऐसा न हो कि उलटी हवा (विपरीत वायु) वा आँधी के आने से नौका नदी की तह में पहुँच जाए! अतः प्रत्येक बुद्धिमान् उस समय तक ही नाव में बैठना अच्छा जानता है जब तक नदी को पार न किया हो। इससे स्पष्टतया यह परिणाम निकलता है कि मनुष्य मृत्यु से भयभीत हैं। वे खुले शब्दों में अपनी असफलता स्वीकारते हैं। जो सफलता प्राप्त कर चुके हैं उनको मृत्यु का तनिक भी भय नहीं होता।

दूसरे, मनुष्य जिनको इस गाड़ी के छूट जाने पर दूसरी इससे उत्तम गाडी मिलने की आशा होती है, वे कभी इस गाड़ी के छूटने पर शोक नहीं करते, परन्तु जिनको इस गाड़ी के छूटने पर बुरी गाड़ी मिलने का भय होता है वे मृत्यु से डरते हैं। इसका आशय यह है कि जिन मनुष्यों ने जीवात्मा और परमात्मा का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके अपने को मुक्ति का अधिकारी बना लिया है, वे मृत्यु से तनिक भी भय नही खाते। जो मनुष्य दिन–रात धर्मकार्य करके अपनी उन्नति को बढ़ा रहे हैं, उनको भी मृत्यु का भय नहीं होता, परन्तु जिन मनुष्यों ने अपने जीवन को पापों की नदी में डालकर बिगाड़ लिया है, उन्हें मृत्यु का भय लगा रहता है।

दूसरी बात यह है कि एक मनुष्य किसी सराय में किराये पर रहता है और दूसरा उसी सराय का स्वामी भी वहीं रहता है। अब यदि दोनों को गवर्नमेण्ट की ओर से यह आज्ञा दी जाए कि तुम इस स्थान को दो घण्टे में छोड़ दो तो कष्ट किसको होगा? स्वामी को, न कि किरायेदार को, क्योंकि किरायेदार तो जानता है कि मेरा इस सराय में क्या है! मुझे तो किराया देना है, यह सराय न सही दूसरी सही! परन्तु जिसने इस स्थान को अपना समझा हुआ है उसे कष्ट अवश्य होगा, क्योंकि वह यह समझ रहा है कि मैंने वर्षों परिश्रम करके इस घर को बनाया है, ऐसा घर मिलना अति दुर्लभ है, अतः छोड़ने में कष्ट होना स्वाभाविक है।

तीसरे, दो मनुष्य सराय में ठहरे हुए हैं, एक के पास तो बहुत–सा सामान है, परन्तु दूसरे के पास केवल एक लंगोटी। अब यदि दोनों को आज्ञा मिले कि तुम तुरन्त इस सराय को छोड़ दो तो दुःख किसको होगा?उसको जिसने कि बहुत–सा सामान एकत्र किया हुआ है जिसने कुछ भी सामान नहीं रक्खा उसे कुछ भी दुःख न होगा, क्योंकि सामानवाले को उसे उठाने के लिए बहुत–सी वस्तुओं की आवश्यकता होगी। इन सब बातों से पता चलता है कि मृत्यु से निम्नलिखित मनुष्य डरते हैं –

(१) वह मनुष्य जिसने अपना समस्त जीवन उद्देश्य की प्राप्ति के बदले धन एकत्र करने में गँवा दिया है।

(२) वह मनुष्य जिसने कि विषयों के भोग के लिए सहस्रों प्रकार के पापों से अपने आपको ऐसा बना लिया है कि उसको मरकर इससे उत्तम देह मिलने की आशा ही नहीं।

(३) वह मनुष्य जो इस शरीर को प्रति का विकार एवं रहने के लिए चंद–रोजा थोड़े दिन रहने की, सराय न समझता हो और जिसे यह पता न हो कि इस शरीर का किराया नित्यप्रति देना पडता है। यदि किराया न दिया जाए तो इस सराय में रहना कठिन हो जाता है, इतना होने पर भी जो शरीर को अपना मानने लगता है, नहीं–नहीं, अपने को देह ही समझता है, तथा

(४) वह मनुष्य जिसने कि संसारी पदार्थ अगणित संख्या में एकत्र किये हों, क्योंकि मृत्य के समय उन्हें साथ नहीं ले–जा सकता और छोड़ने में कष्ट होता है।

निम्नलिखित मनुष्य मृत्यु से तनिक भी नहीं डरते –

(१) वह ज्ञानी महात्मा जिसने नियमानुकूल वेदों के अध्ययन से जीवात्मा और परमात्मा का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके अपने को मुक्ति का अधिकारी बना लिया हो।

(२) वह मनुष्य जो दिन–रात धर्म और परोपकार के कामों में लगा हो।

(३) वह मनुष्य जो शरीर को प्रति का विकार समझकर उद्देश्य पर पहुँचने के लिए शरीर को किराये की गाड़ी समझता हो।

(४) वह मनुष्य जो वैराग्य को हृदय में धारण करके एक लंगोटी के सिवाय दूसरी वस्तु न रखता हो।

इसका प्रमाण हमें संसार के बहुत–से उदाहरणों से मिल सकता है। जिन मनुष्यों ने स्वामी दयानन्द की मृत्यु को देखा है, वे भली प्रकार जान सकते हैं कि ईश्वरभक्त मृत्यु से तनिक भी नहीं डरते। उन्हें मृत्यु भयंकर के बदले कल्याणकारी जान पड़ती है। अब दूसरी ओर ईसा की मृत्यु को देखिए कि मरते समय कहता है –

"हे मेरे ईश्वर! तूने मुझे क्यों छोड़ दिया?" मानो वह अपने शब्दों से यह बताता था कि वह मृत्यु को नहीं चाहता, जिसका स्पष्ट अर्थ यह था कि उसने अपने उद्देश्य का ध्यान भी नहीं किया था। वह अपने सत्य के मार्ग पर चलने का प्रयत्न कर रहा था, परन्तु उसे पता भी न था कि सत्य कहाँ से प्राप्त हो सकता है, क्योंकि वह बौद्धों का शिष्य था, अतः वेदों से अनभिज्ञ होने के कारण उत्तम मनुष्य होते हुए भी मनुष्य–जीवन के उद्देश्य को न जान सका। इसी प्रकार बहत–से मनुष्यों की मृत्यु को देखने से उनकी आन्तरिक अवस्था का भेद खुल जाता है। स्वामी दयानंद जी की मृत्यु से गुरुदत्त की आन्तरिक अवस्था का भेद खुल जाता है।

गुरुदत्त जैसे योग्य मनुष्य को जोकि साइन्स आदि की निर्बल शिक्षा के कारण कुछ थोड़े–से नास्तिक थे, स्वामीजी की मृत्यु ने इस प्रकार का आस्तिक बनाया कि उनपर मृत्यु का भय कभी प्रभाव न डाल सका। समस्त संसारी इच्छाओं से पृथक् रहकर गृहस्थ में ही योग के लिए प्रयत्न करते–करते इस संसार को त्याग दिया। पण्डित लेखराम की मृत्यु तो आपके सम्मुख ही हुई है। उसका वृत्तान्त किसी समाचारपत्र के पढ़नेवाले से छिपा नहीं है। क्या कारण था कि पण्डित लेखराम को मृत्यु का तनिक भी भय नहीं था और वह किसी सांसारिक शक्ति के भय से अपने उद्देश्य से तनिक भी नहीं डरता था?ईश्वर का सच्चा विश्वास ही इसका कारण हो सकता है। इस सम्बन्ध में बहुत–से उदाहरण मिलते हैं कि जो मनुष्य ईश्वरभक्ति को अपने जीवन का उद्देश्य समझकर अपने कर्तव्य का पालन करते हैं, उन्हें कभी भी मृत्यु का भय नहीं होता और वे शरीर को त्याग देना वस्त्रों के बदलने से अधिक नहीं समझते।

यदि आप चाहते हो कि मृत्यु से निर्भय हो जाओ, संसार की कोई बुराई तुम्हारी आत्मा पर अधिकार न जमा सके और संसार का कोई शक्तिशाली तुम्हें न दबा सके, तो सीधे सब झंझटों को छोड़ परमात्मा की आज्ञा के अनुकूल वेदोक्त कर्म, उपासना और ज्ञान के द्वारा मल, विक्षेप और आवरण–इन तीनों दोषों को दूर करके आत्मा के स्वरूप को जानो और उससे आत्मबल प्राप्त कर आनन्द भोगो और निर्भय हो, हँस–हँसकर मृत्यु का स्वागत करो।

दुख से मुक्ति

रुपक निजानंदी, सुरुंगा-झापा नेपाल

सृष्टी उत्पत्ती के पश्चात् जब से मानव में चेतना का विकास हुआ है, तब से लेकर आज तक का खोज का बिषय यह रहा है कि कैसे दुख से मुक्ति मिले और कैसे सुख मिले। वैसे तो खोज का क्षेत्र बहुत से रहे हैं, परन्तु मैं उसे मुख्यतः दो क्षेत्र में सिमटकर अपना विचार प्रकट कर रहा हूँ।

एक है भौतिक दार्शनिक क्षेत्र से खोजा गया खोज। कार्ल माक्स, लेनिन, स्तालिन, माओत्सेतुंग आदि कई भौतिक दार्शनिक हुए जिन्होंने भौतिक क्षेत्र से सुख को खोजा, परन्तु कालान्तर में उन के खोज मतभिन्नता में बदलते गए और फिर उसी मतभिन्नता ने संघर्ष का रुप लिया और सुख के बदले दुख ही दिया।

दूसरा खोज का क्षेत्र है आध्यात्मिक। इस क्षेत्र में भी कई मनीषियाँ हुए हैं और कई शास्त्र ग्रन्थ भी जिनका एक एक नाम देना थोड़ा कठिन है, परन्तु दुख से मुक्ति की जितनी भी शास्त्रीय बातें आई हैं, उन में एक बात मिलकर यह आया है कि संसार में दुख है,दुख का कारण है, कारण का निवारण है और निवारण के बाद निर्वाण (जन्म मरण से मुक्ति) है।

अब दुख के बारे में थोडी सी चर्चा करते हैं कि क्या है दुख?क्या आर्थिक विपन्नता के कारण हमारी इच्छाएं, कामनाएँ और आवश्यक्ताओं का अपूर्ण होना ही दुख है?अगर दुख का यही कारण होता तो फिर विशाल राजपाट की ओर से मिल रही बैभव, सुख शयन और मौज मस्ती की ब्यवस्थाओं के उपरान्त भी सिद्धार्थ गौतम के मन में क्यूँ यह आया कि जीवन में दुख है?तो केवल आर्थिक विपन्नता के कारण आने वाली कष्टप्रद परिस्थितियाँ ही दुख नहीं है, अपितु प्रातिक नियम कि ओर से जीवन में आने वाले घट्ना चक्र का नियम ही वास्तविक दुख है जैसे जन्म।एक जीव को जन्म लेने के लिए उसे भौतिक शरीर आवश्यक होता है। हर योनी के अपने अपने समय होते हैं।

एक जीव को मानव के रुप में जन्म लेने के लिए भी नौ महीने तक गर्भ में रहना पड्ता है और कहा जाता है कि गर्भ में रहना भी उतना ही कष्टकारी होता है जितनी अग्नि की भट्टी में। जन्म के पश्चात् मूलतः अस्थी, मांस और चर्म से बने शरीर को कई शारिरिक और भावना के कष्टों से होकर गुजरना पडता है जैसे अति ठण्ड, अति गर्मी, रोग, ब्याध, दुर्बलता, लाभ,

हानि, मित्रता–शत्रुता मान अपमान सगे सम्बन्धियों का वियोग का दुख, मृत्यु का दुख आदि। मृत्यु के बाद फिर जन्म फिर वही दुख का सिलसिला।

दुख का कारण है – जन्म। यदि जन्म ही न हो तो दुख कहाँ से होगा?

जन्म का कारण है मोह, आसक्ति और तृष्णा

भोग की इच्छा में पूर्ण रुप से तृप्त न होना अर्थात अतृप्त इच्छा। अपूर्ण और अतृप्त इच्छा ही मानव में पूर्ण तृप्ती की इच्छा बनाए रखती है और वही अगले जन्म का कारण बनता है। तो हमें समझना यह है कि जन्म और मरण का यह चक्र जो दुख का कारण है से पार कैसे पाएँ? क्या इसका कोई निवारण भी है? निवारण अवश्य है।

क्या है निवारण?

निवारण है ध्यान (समाधी) एक कहावत है– मन है ब्याधी और समाधान है समाधी। हम यानेकि मानव (चौतन्य शक्ति, आत्मा) इसी शरीर, इन्द्रीय और मन के द्वारा संसार से चिप्टे हुए हैं। जब तक मन की नजर संसार की तरफ है, तब तक चेतन शक्ति की नजर भी संसार की ही तरफ लगी रहेगी और सांसारिक सुख दुख का बराबर भागीदार होता रहेगा।तो इस समस्या से मुक्ति का मार्ग सिर्फ ध्यान है। यूं तो ध्यान विधि भी कई होंगी मगर सरलता और प्रभावकारिता के ष्टिकोण से दो ध्यान विधि का उल्लेख करना चाहूँगा।

एक है सर्वोत्श्ट ध्यान विधि जिसे निजानन्द योग कहते हैं। निजानन्द योग में सर्वप्रथम ही अपना निज स्वरुप (आत्मा का परात्म) का भाव लेकर इस नश्वर धरती की से परमधाम तक का यात्रा की धारणा बनायी जाती है। जब आप धारणा से मूलमिलावा में पहुँच जाते हो तब युगल स्वरुप की शोभा सिंगार पर धारणा को केन्द्रित कर स्थिर करके ध्यानस्थ अवस्था में चले जाते हो। जिस तरह अग्नि भट्टी के समीप रहने से ठन्ड में आप को आवश्यक उष्णता मिल्ती है,उसी तरह त्रिगुणात्मक विकार से परे त्रिगुणातीत दिव्य गुणों के सागर अक्षरातीत परब्रह्म परमात्मा का नियमित और श्रद्धापूर्वक ध्यान करते रहने से उस दिव्य गुण का तरंग आप में भी शामिल होता जाएगा और एक दिन प्रत्यक्ष आत्मा की जागृती हो जाएगी।

परिणामस्वरूप जीव का जन्म मरण का सिलसिला खत्म होकर दुख से स्थायी मुक्ति मिल जाएगी। ध्यान समाधी योग में सफलता प्राप्त कर चुके परमहंस ब्रह्ममुनियों के अनुसार जो साधक मन को बिना इधर उधर भटकाए एक टक तीन से चार घन्टे तक धारणा में ढ रहे वही साधक ध्यान समाधी योग में सफलता पा सकता है। लोक व्यवहार को देखा जाए तो हो सकता है कि विभिन्न कारणवश एक गृहस्थी के लिए सुबह शाम 4–4 घन्टे की ध्यान साधना कठिन और असम्भव हो तो वे गृहस्थ क्या करे जो ध्यान साधना करना तो चाहते हैं मगर परिस्थिती प्रतिकूल हो?तो ऐसे में दूसरा प्रभावशाली ध्यान विधि भी है,जिसे हम विपश्यना कहते हैं। विपश्यना का अर्थ है राग और द्वेष से परे होकर स्वयं को देखना,अपने अंदर की संवेदनाओं को

केवल द्रष्टा भाव से देखना, अपने चित्त को देखना और उसके धर्म को देखना याने कि अन्दर उभरने वाले बहुत से प्रकार के भावों को देखना।

सामान्य जीवनचर्या में हमें अगर सुख मिल जाए तो हम खुश होते हैं और यह चाहत बना लेते हैं कि यह सुख हम से ना छूटे। आध्यात्मिक भाषा में इसी को राग कहते हैं। अगर हमें दुख मिल जाए तो हम दुखी हो जाते हैं और चाहत बना लेते हैं कि यह हमें नहीं चाहिए। यह चले जाएं और फिर कभी लौटके न आए। यह है द्वेष। विपश्यना में यही साधना किया जाता है कि सुखद हो या दुखद जैसी भी संवेदना प्रकट हों उसे अनित्य मानकर कोई राग द्वेष का भाव लाए बिना केवल निश्पक्ष द्रश्टा भाव से देखते रहना। परिणाम होगा हमारे शरीर, इन्द्रिय और मन में व्याप्त वैकारिक्ताओं का शनैः शनैः निर्मलता। सर्वमान्य तथ्य यह है कि जब हमारे शरीर, इन्द्रिय और अन्तस में विद्यमान विकारों का सफाई हो, तभी हम पूर्ण निर्विकार हो सकते हैं तभी लौकिक अहं भाव की समाप्ति हो सकती है, तभी शुद्ध दिव्य प्रेम भाव का पुष्प खिल सकता है तभी हर लौकिक इच्छा और चाहनाओं की समाप्ति होता है और इसी को निर्बीज समाधी भी कहा जाता है। निर्बीज समाधी का अर्थ है ध्यान समाधी में उस स्तर में पहुँचना जहाँ पहुँचने के बाद लौकिकता का बीज तक न रहना। हाँ ....!

मेरे परमप्रिय सुन्दरसाथ साथियों। चूंकि हमारे पास तो परमधाम का ज्ञान है,परमात्मा का धाम,लीला और स्वरुप का ज्ञान है। आत्मा और परमात्मा का अन्तरसम्बन्ध (निसबत) का ज्ञान है तो बस फिर क्या चाहिए?जैसे ही हमें निर्बीज समाधी मिलेगी,परमात्माका दिव्य दर्शन की भूमिका भी मिल जाएगी। विपश्यना वैदिक ध्यान पद्धति का ही एक रुप है।जो संख्य दर्शन से निकला है।कालांतर में भगवान् बुद्ध के द्वारा इसका बहुलता से प्रचार हुआ। आज से २५०० वर्ष पहले इस धरती पर परमधाम का ज्ञान नहीं था। इसलिए विपाशना सिर्फ निर्वाण तक की सीड़ी बन सकी मगर अब तो अवस्था ऐसी नहीं है इसलिए विपश्यना से निर्बीज समाधी की भूमिका को हम परमात्मा दर्शन तक का माध्यम बना सकते हैं।

स्मरणीय बात यह है कि हम में से किसी को भी यह लग सकता है कि यदि हम विपश्यना साधना करने लगे तो क्या यह नहीं माना जाएगा कि हम निजानन्द पद्धति से विमुख हो गए?इसका समाधान यह है कि विपश्यना साधना निजानन्द पद्धति से भ्रष्ट होने के लिए नहीं अपितु परमात्मा दर्शन की एक वैकल्पिक साधना है।हमारा ध्येय तो राजजी ही होंगे,हमारा लक्षय तो राजजी ही रहेंगे।जिन के लिए सुबह शाम रोज रोज 3–4 घन्टे तक चितवनी करना असम्भव लगा हो या कई सालों से चितवनी करते हुए भी कोई सकरात्मक परिणाम हासिल न हुआ हो सिर्फ उन्हीं के लिए मेरी यह हिदायत है। जिन्हें मेरा यह लेख पढकर बुरा लगा हो,उन से क्षमाप्रार्थी हूँ।जिन्हें यह जिज्ञासा हो कि विपाशना के बारे में जानकारी कैसे मिले तो बता दूं कि ल्वन जनइम के जरिए सभी जानकारी मिल जाती हैं। ऐसा मेरा व्यक्तिगत विचार है।

बीतक समीक्षा - २

प्रस्तुति एवं प्रलेखन

कृष्ण कुमार कालड़ा, जयपुर

'तारतम मंजरी' के पिछले अंक (सितम्बर 2019) से हमने पूज्य ***श्री राजन स्वामी*** *जी द्वारा वर्ष 2018 में श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा में की गई बीतक चर्चा पर आधारित लेखों की एक श्रृंखला प्रारभ की है। इसमें प्रत्येक अंक में एक विशेष प्रसंग/घटनाक्रम का संक्षिप्त उल्लेख कर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया जायेगा कि यह हमारे लिये क्यों महत्वपूर्ण है तथा इससे हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिये। आशा है, पाठकों को यह श्रृंखला रुचिकर व उपयोगी लगेगी। आपके सुझाव सादर आमंत्रित हैं।*

– संपादक

कच्छ देश की बीतक

मूर्ति/जड़ पूजा अभिशाप है

जब श्री देवचन्द्र जी की आयु मात्र साढ़े सौलह वर्ष की थी तो वे ज्ञान की खोज में कच्छ देश पहुंचते हैं। उनके मन में मात्र यही प्रश्न थे– मैं कौन हूं, कहां से आया हूं तथा इस शरीर व संसार को त्यागने के पश्चात् जाना कहां है?इनके समाधान के लिये वे विभिन्न मत–पंथों, यथा दतात्रेय, नाथ, कापड़ी इत्यादि में भटकते हैं। यहां तक कि अपनी आध्यात्मिक प्यास बुझाने के लिये वे मुस्लिम मौलवियों के पास भी जाते हैं। अंत में, वे वैष्णवों के चारों पंथों – रामानुज, निम्बार्क, माधवाचार्य एवं विष्णुश्याम – के अनुयायियों के पास भी जाते हैं परन्तु ज्ञान चर्चा से पूर्णतया रहित तथा मंदिरों में होने वाले कोलाहलपूर्ण कर्मकाण्डों में उनका मन नहीं लगता। न ही उन्हें कोई विशेष अनुभूति हुई और न ही अन्तरात्मा से कोई साक्षी मिली।

साथ ही, श्री देवचन्द्र जी जिस किसी भी पंथ के मंदिर गये, वहां देवी–देवताओं की मूर्तियां थी तथा जड़ पूजा (आग, पत्थर, पानी, पेड़ आदि) का बोलबाला था। लेकिन श्री देवचन्द्र जी जानते थे कि

उन्हें इनसे कुछ भी प्राप्त नहीं होने वाला है।

यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि लगभग 3,000 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुई मूर्ति पूजा ने सम्पूर्ण हिन्दू जनमानस की बुद्धि को इतना जड़ बना दिया है कि कोई यह नहीं सोचता कि हमारे धर्मशास्त्रों में लिखा क्या है?समस्त हिन्दू समाज को ज्ञान, भक्ति और वैराग्य से रहित कर आडम्बरों की प्रभुता स्थापित करने का श्रेय मूर्ति/जड़ पूजा को ही जाता है। कहीं कोई पत्थर का टुकड़ा नदी में बहता मिल गया तो उसे सालिग्राम मानकर सिर झुकाने लगते हैं। घर के आगे ईंट का चबूतरा बनाकर उसे अपना कुल–देवता मानने लगते हैं। कहीं कोई मजार देख ली तो उस पर सिर पटकना प्रारम्भ कर देते हैं। वृक्षों व नदियों की पूजा करते हैं परन्तु जिसने सारी सृष्टि को बनाया है उससे मुख मोड़ लिया। गीता कहती है – 'ईश्वरे सर्वभूतानम...' अर्थात् परमात्मा हृदय मन्दिर में बसता है। लेकिन दुनिया एक कारीगर द्वारा बनाई गई मूर्ति को, जिसमें तथाकथित प्राण–प्रतिष्ठा भी इंसान द्वारा ही की जाती है, को परमात्मा मानती है। यदि मंत्र पढ़कर एक पत्थर या धातु की मूर्ति में प्राण भरे जा सकते हैं तो क्यों नहीं हम मुर्दे को जीवित कर लेते। वास्तव में, हमने वेदों, उपनिषदों, गीता, दर्शनशास्त्रों आदि को नहीं देखा और मनमानी कल्पनाओं के आधार पर तरह–तरह के मत–पंथ बना लिये, सर्वशक्तिमान परमात्मा को मन्दिरों में बंद कर दिया तथा ज्ञान के सारे ताले बंद कर दिये ताकि हृदय में ज्ञान का प्रकाश न हो सके और न ही हमारा विवेक जाग्रत हो सके। इसी अंधकार से निकालने के लिये श्री प्राणनाथ जी की ब्रह्मवाणी आई है।

लेकिन यह खेद की बात है कि परमधाम की ब्रह्मात्माओं का दावा करने वाले हमारे समाज में भी दूसरों की देखा–देखी मूर्ति पूजा को भोले–भाले सुन्दरसाथ पर थोपा जा रहा है। वाणी में कहीं भी मूर्ति पूजा का विधान नहीं है। यदि ऐसा होता तो श्री प्राणनाथ जी के अर्न्तध्यान के पश्चात् गुम्मट जी मन्दिर में श्री जी के सिंहासन पर वाणी को पधराने की क्या आवश्यकता थी?वहां भी उनकी मूर्ति स्थापित की जा सकती थी। वास्तव में हमारे मन्दिरों की कार्य–पद्धति बिल्कुल भौतिकवादी हो गई है जिसमें अधिक से अधिक धन कमाना प्रमुख उद्देश्य हो गया है। धर्म के नाम पर श्रद्धा का व्यापार हो रहा है, जो किसी भी प्रकार से उचित नहीं है।

अब यहां यह प्रश्न उठता है कि क्या वाणी चेतन है?यद्यपि तकनीकी रूप स इसमें चेतनता का कोई लक्षण विद्यमान नहीं है, तथापि यह हमारे लिये पूज्य तथा मार्गदर्शक है क्योंकि इसमें निहित ज्ञान स्वंय अक्षरातीत का है। हमारी भावना किसी तरह से युगल स्वरूप पर केन्द्रित हो, इसलिये वाणी को उनका ज्ञानमय स्वरूप माना जाता है। यदि ऐसा करके हम भावविह्वल हो जाते हैं तो उनका साक्षात्कार भी संभव है। इसके विपरीत मूर्ति एक कलाकार बनाता है, अतः मूर्ति की तुलना वाणी से नहीं की जा सकती।

श्री देवचन्द्र जी कच्छ देश में लगभग चार वर्ष तक रहते हैं लेकिन उन्हें अपन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिला। आखिर थक–हार कर वे वहां से भोजनगर आते हैं जहां उनकी भेंट राधाबल्लभ मत के अनुयायी श्री हरिदास जी से होती है। उनके मन में कोई स्वार्थ की भावना नहीं थी। उनकी संगति में रहकर श्री देवचन्द्र जी ने भी उनकी प्रेमभरी सेवा की अटूट भावना देखी तथा उन्हें बहुत शांति मिली। उन्हें लगा कि जिस ज्ञान की खोज में वे वर्षों से भटक रहे हैं वह उन्हें श्री हरिदास जी से प्राप्त हो सकता है। वे शुद्ध मन, वाणी तथा कर्म से उनकी

सेवा करने लगे। श्री देवचन्द्र जी की सच्ची लगन देखकर श्री हरिदास जी ने उन्हें दीक्षा देने का विचार किया।

श्री हरिदास जी के मन्दिर में दो मूर्तियां थी – एक बालमुकुन्द जी की एवं दूसरी बांकेबिहारी जी की। उनकी निष्ठा इतनी अधिक थी कि वे मूर्ति को मूर्ति नहीं मानते थे तथा उनमें साक्षात परमात्मा का भाव लेते थे। इसके बाद का घटनाक्रम कुछ इस प्रकार घटित होता है कि श्री हरिदास जी, श्री देवचन्द्र जी की निःस्वार्थ सेवा से प्रभावित होकर उन्हें बालमुकुन्द जी की मूर्ति देने का निर्णय लेते हैं। लेकिन जब मूर्ति देने का दिन निर्धारित होता है तब बालमुकुन्द जी की मूर्ति अपने स्थान से गायब हो जाती है। बाद में बालमुकुन्द जी श्री हरिदास जी को साक्षात दर्शन देकर श्री देवचन्द्र के स्वरूप की वास्तविक पहचान कराते हैं तथा उन्हें बांकेबिहारी जी के वस्त्रों की सेवा देने का आग्रह करते हैं।

यहां यह स्पष्ट करना वांछनीय है कि भोजनगर के उक्त प्रसंग से मूर्ति पूजा की किसी प्रकार से सार्थकता सिद्ध नहीं होती। मूर्ति में ईश्वर की भावना करना एक अलग बात है। उल्लेखनीय है कि स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने भी काली की मूर्ति के अन्दर परमात्मा की भावना से सेवा की थी लेकिन जब तक उनकी समाधि नहीं लगी, उन्हें साक्षात्कार नहीं हुआ।

सारांश रूप में यही कहा जा सकता है कि स्थूल जड़ पूजा का त्याग किये बिना अध्यात्म के चरम लक्ष्य को नहीं प्राप्त किया जा सकता। मूर्ति पूजा ने हिन्दू समाज को हजार वर्ष गुलामी की जंजीरों में जकड़े रखा है और जब तक यह परम्परा रहेगी, हमारे देश में आध्यात्मिक शिक्षा का न तो प्रसार हो पायेगा और न ही योगी, तपस्वी और परमहंस पैदा हो पायेंगे।

लेखकों के लिए आवश्यक सूचना

सुन्दरसाथ के चरणों में विनम्र प्रार्थना है कि जो भी सुन्दरसाथ लिखने में कुशल,योग्य है। जो अपना भाव तारतम वाणी और शास्त्रों के माध्यम से दूसरों तक पहुंचाना चाहते हैं ऐसे सुन्दरसाथ अपना लेख ईमेल (E-mail) या वटसप (watsapp) के माध्यम से ज्ञानपीठ में भेजें। लेख भेजने की अन्तिम तीथि प्रत्येक महिने की 1 तारिख तक रहेगी। समय पर भेजे गये लेखों को ही उस महिने की पत्रिका में प्रकाशित किया जायेगा।अन्यथा आगे आनेवाली महिनों में प्रकाशित की जायेगी।

लेख भेजने का नियम–
1–शुद्ध टाईप होनी चाहिए।
2–हस्तलिखित शुद्ध एवं स्पष्ट होना चाहिए।
3–टाईप किया गया लेख हो तो ओरजिनल कांपी होनी चाहिए।
4–डाक से ज्ञानपीठ के पते भर भेज सकते हैं।
5–हस्तलिखित लेख को PDF बनाकर ही भेजें, ताकि पढने में और टाईपिंग में असुविधा न हो।

तारतम मंजरी मासिक पत्रिका "लेख" प्रेषित हेतु एवं अन्य कोई भी असुविधा के लियें निम्नलिखित EMAIL और दूरभाष नम्बरों पर सम्पर्क करें।

tartammanjari@gmail.com

+9193141 93262 (जूनेजा बाबूजी)
+919725389547 (आचार्य सुभाष जी)

आत्मचिन्तन - 2

दीप्ति, सरसावा

पिछले लेख में हमनें इस बात को समझा कि ब्रह्म वाणी को दुनिया में फैलाकर सबको एक परमात्मा की शरण में लाना हमारा कर्तव्य है, लेकिन ऐसा करते हुए हमें **स्वयं की जागृति** के प्रति हर–पल सजग रहना चाहिए और यही हमारे जीवन का परम लक्ष्य भी है। क्योंकि हम केवल स्वयं को बदलने के लिये समर्थ है, दूसरों को केवल समझाया जा सकता है।

सुन्दरसाथ जी! आज हम **स्वयं की जागृति** के लिये शरीर रूपी साधन जो हमें परमात्मा की पा से मिला है, उसका हम सही दिशा में प्रयोग कर रहें है या नहीं या इस अनमोल मानव जीवन की हर एक सांस का सदुपयोग कर रहें है या नहीं तथा हमारी दिनचर्या कैसी होनी चाहिए, इस बात पर विचार करेंगे।

सुन्दरसाथ जी! यदि हम अपने चारों ओर चल रही मनुष्य की गतिविधियों को देखें, तो पता चलेगा कि सब लोग किसी अंधी दौड़ में लगे हुये हैं। कोई संसारिक धन को एकत्रित करने में लगा है, तो कोई झूठी प्रतिष्ठा पाने में। कोई किसी पद को हासिल करने के लिए दौड़ रहा है, तो कोई दूसरों की नजरों में ऊपर उठने तथा दूसरों को गिराने में लगा हुआ है और हर व्यक्ति इस दौड़ में इतना व्यस्त है, कि उसके पास ये भी सोचने का समय नहीं है कि वो संसार के जिन भौतिक नश्वर आकर्षणों के पीछे अंधा होकर दौड़ रहा है, क्या उसको प्राप्त कर लेने पर उसे संतोष, प्रेम, आनंद या परम शांति की प्राप्ति हो जायेगी?क्या इस नश्वर पद, प्रतिष्ठा, धन, सुख–सुविधा आदि को पाना ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है?क्या हम जिसे एकत्रित करने में अपना पूरा जीवन लगा रहें है, वो मृत्यु के बाद भी हमारे साथ जायेगा?

सुन्दरसाथ जी! हम सब यह भलीभांति जानते हैं कि मृत्यु के बाद इसमें से कुछ भी हमारे साथ नहीं जायेगा। एक छोटी सी सूई भी साथ ले जाना संभव नहीं होगा। तो फिर इतनी भाग–दौड़ क्यों?इतना तनाव क्यों?इतनी हौड़ किस बात की?इतनी खींच–तान किस काम की?

सुन्दरसाथ जी! क्या हमने कभी शांति पूर्वक बैठकर इस बात पर विचार किया है कि जिस शरीर की सुन्दरता, स्वस्थता और सुःख–सुविधाओं को बढ़ाने के लियें हम अपना अनमोल मानव जीवन गवां रहें है, उसकी मृत्यु के बाद क्या दशा होती है?यदि सोचेंगे तो स्पष्ट हो जायेगा की एक मुट्ठी भर राख से अधिक कुछ नहीं बचता तो फिर इस मुट्ठी भर राख के लिये इतना मोह क्यों?इतना उत्पात् क्यों?इतनी चिंता क्यों?साथजी श्री मुखवाणी के किरंतन ग्रन्थ की इन चौपाईयों को देखें जो शरीर की नश्वरता पर प्रकाश डाल रही है।

किरंतन प्रकरण–33,चौपाईयाँ–

रे जीव सरीर मंदिर सोहामनों,
चौदे खूने रे अवास।
इनको भरोसे जे रहे,
ते निकस चले निरास।।
गुन पख अंग इंद्रियां,
सबके जुदे जुदे स्वाद।
तरफ अपनी खैंचहीं,
खेलत मिने विवाद।।
ए अनमिलती सों न मिलिए,
जाको सांचो नहीं संग।
नाहीं भरोसो खिन को,
ज्यों रैनी को पतंग।।
रे जीव सरीर रची सेजड़ी,
इत आवे नींद अपार।।

वास्तव में यह शरीर तो एक साधन मात्र है। अब यह हम पर निर्भर करता है कि हम इसे नश्वर भोग–विलास के पीछे व्यर्थ कर अपना जीवन और मृत्यु नर्क तुल्य बना लें। 84 लाख योनियों के दुःखों की अग्नि में जलें या फिर इसका सदुपयोग परमात्मा प्राप्ति के लिये कर अपने मनुष्य जीवन को सार्थक बना ले।

सुन्दरसाथ जी! जरा किरंतन ग्रन्थ प्रकरण–34 की इन चौपाईयों को सोचें–

मैं पाले प्यार करके,
सो वैरीड़े भए तिन ताल।
मोसों तो राख्यो ए सनमंध,
तुमें डारे ले जम जाल।।
तुम जान बूझ मोहे मोहीसों,
छोड़ के नेहेचल सुख।
मैं तो आई भले अवसर,
पर भूले सो पावे दुःख।।
ए अवसर क्यों भूलिए,
जित पाइए सुख अखंड।
या घर बिना सो ना मिले,
जो ढूंढ़ फिरो ब्रह्मांड।।
और उपाय कई करो,
पर पाइए न या घर बिन।
अंदर जागके चेतिए,
ए अवसर अधखिन।।
इन बिध लाहा लीजिए,
अनमिलती का रे यों।
खुखड़ा दिया धुतारिए,
याको बुरी कहिए क्यों।।

ए सूतेही पटकावहीं,
पुकार न पीछे बहार।।
कांटे चुभे दुःख पाइए,
सेहे न सके लगार।
पर होत है मोहे अचंभा,
ए क्यों सेहेसी जम मार।।
इन गफलत के घर में,
पडेगी बड़ी अगिन।
पीछे लाख चौरासी देह में,
जलसी रात और दिन।।

सुन्दरसाथ जी! सिकंदर को तो हम सब जानते ही है। मात्र 24 वर्ष की छोटी सी आयु में पूरी दुनिया पर विजय प्राप्त कर लेने वाले सिकंदर को आखिर कौन नहीं जानेगा?लेकिन उसके जीवन धारा से मिली हुई सीख को हम क्यों भूल जाते हैं?पूरी दुनियां की दौलत भी उसके जीवन की कुछ सांसे भी नहीं बढ़ा सकी। मृत्यु के बाद उसके हाथ अर्थी से बहार रखें गयें ताकि आनेवाली पीढ़ी को हमेशा स्मरण रहे कि यदि हम पूरी दुनिया की धन–दौलत भी इकट्ठी कर लेंगे फिर भी खाली हाथ ही जायेंगे और हम वो भूल ना दोहराये जो सिकंदर ने करी। लेकिन दुर्भाग्य वश आज भी हम सब सिकंदर बनने की होड़ में ही लगे हुए हैं।

सबकुछ जानते–समझते हुए भी हमारे अनमोल जीवन का अधिकांश समय शरीर और संसार पर ही केन्द्रित है। हम सोचते हैं, जब दुनिया के अधिकांश लोग यही कर रहे हैं, तो हमारे ऐसा करने में क्या आपत्ति है?मरने के बाद क्या होगा किसने देखा? उससे तो अच्छा है कि जितना जीए, खाए–पीए, मौंज–शोक में समय बिताये और ऐसा करने के लिए कुछ गलत कार्य भी करने पड़े तो भी कौन देख रहा है?क्या फर्क पड़ता है?और इन्हीं सब भौतिकवादी सुख–सुविधाओं को, आधुनिक पाश्चात् संस्कृति को जीने को ही अपने जीवन का परम लक्ष्य बना बैठे हैं। क्या हमने कभी सोचा कि जिस पाश्चात् जीवनशैली को जीने को ही हमने अपना गौरव मान लिया है, वे लोग उस जीवन से तंग आकर, उससे छुटकारा पाने के लिए हिन्दुस्तान में योगियों की शरण में आते रहते हैं। सुन्दरसाथ जी हम ये क्यों भूल जाते हैं कि इस माया से आज दिन तक ना कोई तृप्त हुआ, ना कभी कोई होगा।

कोई न अघाया इन माया से,
चचोड़त ठौर मुरदार ।
श्री धाम धनी सुख छोड़के,
क्या हमेशा रहोगे ख्वार ।।

क्या हमने कभी सोचा है कि यदि नश्वर धन, पद, प्रतिश्ठा आदि ही सब कुछ होता, तो क्या जरूरत थी राजकुमार सिद्धार्थ को अपने सोने के महल, विश्वसुन्दरी पत्नि यशोधरा, सुशील पुत्र राहुल को त्यागने की?आखिर, क्या जरूरत थी मीरां को अपने राणा के प्यार और राज को ठुकराने की?

यदि बीतक से देखे, तो क्या जरूरत थी श्री देवचन्द्र जी को 16 वर्श की छोटी आयु में घर का आराम, माता की ममता तथा पिता के लाड़ को त्यागने की?क्या आवश्यकता थी मुकुन्ददास जी को अपनी नव विवाहित पत्नि का त्याग करने की?

सुन्दरसाथ जी, आज हम इतिहास की जिस विभूतियों को, महान व्यक्तित्त्व को सम्मान देते हैं, श्रद्धापूर्वक याद करते हैं या पूजते हैं, फिर चाहे वो महावीर स्वामी हो, दयानंद सरस्वती, कबीर जी, नरसैयाँ, राजा हरिश्चंद्र हो या फिर हमारे कोई भी परमहँस ब्रह्ममुनि हो। इन सबका जीवन त्याग, तप, परिश्रम, अटूट श्रद्धा, दृढ़ विश्वास और समर्पण का ही प्रतीक है।

कुत्रो अपि को अपि न सुखि ।

अर्थात्, कोई भी कहीं भी सुखी नहीं है। सुखी होने का एक मात्र मार्ग है, उस परब्रह्म परमात्मा की शरण में जाना, उससे एकनिश्ठ प्रेम करना तथा उनपर अपना सर्वस्व समर्पित करना। उस अक्षरातीत धनी को पाने के लिए दृढ़ संकल्पके साथ, निश्ठापूर्वक, पूरी श्रद्धा और समर्पण के साथ हमें प्रेममयी ध्यान, ब्रह्मवाणी मंथन तथा प्रेम–सेवा इन तीनों को हमारे दैनिक जीवन का एक अटूट (अभिन्न) हिस्सा बनाना ही होगा। तभी हम अपने जीवन के परम लक्ष्य उस परब्रह्म–धनी के साक्षात्कार को उपलब्ध हो सकेंगे और इस शरीर रूपी अनमोल साधन को सार्थक कर सकेगे, जिसके बिना परब्रह्म धनी की प्राप्ति असंभव है।

आवश्यक सूचना

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा का **चौदहवां वार्षिकोत्सव,**
01 से 07 सितम्बर 2020 को मनाया जायेगा।

रगं महल : पांचवी भोम की शोभा

किरन प्रणामी, जयपुर

अब कहूं भोंम पांचमी,
जहां पोढ़न को पधारत ।
निरत देख चढ़त है,
पोहोर एक रात बखत ।।

परमधाम में रंगमहल की चौथी भोम में सुशोभित निरत की हवेली में अलौकिक निरत हो रहा हैं। हक श्री राज जी, श्री श्यामा जी और रूहें भी झूम उठे। परमधाम के 25 पक्ष और उनमें निवास करने वाले पशु पक्षी और खूब खुशालियां भी निरत की मस्ती मे डूबे हैं। दिन का अंतिम पहर सिमटने को है तो धाम धनी ने भी निरत की लीला समेट पांचमी भोम मे जाने का मन मे लिया। एकदिली वाहिदत की भूमि में महबूब श्री राज जी के मन मे यह विचार आते ही सबके मन मे यह चाह कि अब पांचमी भोम में पियाजी ले चले।

नवरंग बाई और उनके जुथ की सखियों के आलौकिक अदभुत निरत से रीझ श्री राज जी उन्हे पान का बीड़ा बक्शिस में देते हैं और श्री राज श्री श्यामा जी और सब सखियां चलते हैं पांचवी भोम की ओर सीढ़ी वाले मंदिर से मिलावा चौथी भोम से पांचमी भोम में जा रहा हैं। नूरी सीढ़ियों पर नरम गिलम बिछी है और दोनों और रत्नों जड़ित कठेड़े और उन पर बिखरे नूरी फूल उनकी सुगंधी प्रिय लग रही है। श्री राज श्यामा जी अपनी प्यारी सखियों के संग संपूर्ण शोभा निहारते पांचमी भोम में जा रहे हैं। सीढ़ियां चढ़ते समय अर्श मिलावे के भूखनों की झंकार से नवो भोम गूंज रहे हैं।

पांचवी भोम में पहुँच अर्श मिलावा उत्तर दिशा के द्वार से बाहिर निकल कर मध्य गली में आया और पश्चिम की और मुख कर के श्री राज श्री श्यामा जी सब सखियों को संग ले रंगपरवाली मंदिर की और प्रस्थान करते है। गोल चौरस हवेलियों के फिरावों की शोभा निरखते आगे बड़े। श्री राज जी के साथ झूमते गाते गोल और चौरस हवेलियों के फिरावे पार किए और आखरी पंचमोहोलों की हार भी पार की तो सामने 28 मंदिर की फुलवारी की शोभा है।

28 मंदिर की नूरमयी फुलवारी की बेशुमार शोभा देखी दूर तक फैले फूल ही फूल बिखरे हैं और उनके नूरी रंग रूह को भा रहे हैं। उनकी सुगंध से वतन महक रहा है। नहरे चहेबच्चों की न्यारी शोभा है। इन रंगीन नजारों को निहारते फुलवारी पार की और सामने 630 मंदिर की दीवार है ठीक सामने आए द्वार से सबने भीतर प्रवेश किया।

नूरी मंदिरों, चौकों और हवेलियों की बेइन्ताह शोभा देखते दिखलाते पहला चौक श्री राज श्री श्यामा जी और रूहों ने पार किया फिर दूसरे चौक को आधा ही पार किया तो सामने मध्य चौपुड़े मे रंगपरवाली मंदिर आ पहुँचे ।

ए मंदिर रंग परवाली,
सो मैं क्या कहूँ ताकी लाली ।

माँहे अनेक रंगो की जोत,
सो मैं कही ना जाए उधयोत ।।

रंगपरवाली मंदिर दो मंदिर का लंबा चौड़ा आया है। चारों दिशा में 88 हाथ के दरवाजे आए हैं। द्वारों के ऊपर 12 हाथ की मेहराब है जिन पर तीन लाल माणिक के फूलों की शोभा है द्वार के दोनों और 56–56 हाथ की नूरी दीवार है। मंदिर को घेर कर तीन मंदिर की परिक्रमा आई है। मंदिर के भीतर सेज्या सिंघासन कुर्सियाँ हिंडोले सभी साजो समान हैं। सुखसेज्या की शोभा रूह देखती है चार डांडों पर चार पाए हैं। चार कलश चार डांडों पर और एक छतरी पर है। सेज्या में पंचरंगी निवार है। सेज्या पर नर्मो से भी नर्म गद्दे की शोभा है। नूरी तकियों की शोभा रूह ने देखी। सेज्या के सामने नूर की चौकिया हैं जिन पर मुबारक पांव धर युगल स्वरूप श्रीराज–श्यामा जी सेज्या पर विराजते हैं। इन्हीं रंगपरवाली मंदिर में श्री राज जी श्री ठकुरानीजी पोढ़ते हैं। रूहें जैसे ही उनके कदमों में सिजदा कर अपना मुख ऊपर करती हैं तो खुद को अपने मंदिर मे सेज्या पर श्री राज श्री श्यामा जी के सन्मुख पाती है । इन सेज के बेसुमार सुख हैं धाम धनी उनके सभी मनोरथ पूरण करते हैं।

श्री ठकुरानी जी संग राज के,
जोड़े सेज पर बैठे जब ।।
रूहें कदमों लागत,
सिर उठावत तब ।।

जाने अपनी सेज पर,
बैठे संग श्री राज ।
कै सुख इन सेज के,
हक पूरे मनोरथ काज ।।

आत्मा और परमात्मा का मिलन संयोग
सर्वशक्तिमान् परमेश्वर और उसका सान्निध्य

गीता ठाकुर, जयपुर

प्रत्येक कर्म का कोई अधिष्ठाता जरूर होता है। परिवार के वयोवृद्ध मुखिया के हाथ सारी गृहस्थी का नियन्त्रण होता है, मिलों –कारखानों की देखरेख के लिए मैनेजर होते हैं, राज्यपाल–प्रान्त के शासन की बागडोर सँभालते हैं, राष्ट्रपति सम्पूर्ण राष्ट्र का स्वामी होता है। जिसके हाथ में जैसी विधि–व्यवस्था होती है उसी के अनुरूप उसे अधिकार भी मिले होते हैं। अपराधियों को दण्ड व्यवस्था, सम्पूर्ण प्रजा के पालन–पोषण और न्याय के लिये उन्हें उसी अनुपात से वैधानिक या सैद्धान्तिक अधिकार प्राप्त होते हैं। अधिकार न दिये जायें तो लोग स्वेच्छाचारिता, छल–कपट और निर्दयता का व्यवहार करने लगें। न्याय व्यवस्था के लिये शक्ति और सत्तावान होना उपयोगी ही नहीं आवश्यक भी है।

इतना बड़ा संसार एक निश्चित व्यवस्था पर ठीक–ठिकाने चल रहा है, सूरज प्रतिदिन ठीक समय से निकल आता है, चन्द्रमा की क्या औकात जो अपनी माहवारी ड्यूटी में रत्ती भर फर्क डाल दे, ऋतुएँ अपना समय आते ही आती और लौट जाती हैं, आम का बौर बसन्त में ही आता है, टेसू गर्मी में ही फूलते हैं, वर्षा तभी होती है जब समुद्र से मानसून बनता है। सारी प्रति, सम्पूर्ण संसार ठीक व्यवस्था से चल रहा है, जो जरा सा इधर उधर हुए कि उसने मार खाई। अपनी कक्षा से जरा डाँवाडोल हुए कि एक तारे को दूसरा खा गया। जीवन–क्रम में थोड़ी भूल हुई कि रोग–शोक, बीमारी और अकाल–मृत्यु ने झपट्टा मारा। इतने बड़े संसार का नियामक परमात्मा सचमुच बड़ा शक्तिशाली है। सत्तावान न होता हो कौन उसकी बात सुनता। दण्ड देने में उसने चूक की होती तो अनियमितता, अस्त–व्यस्तता और अव्यवस्था ही रही होती। उसकी सृष्टि से कोई भी छुपकर पाप और अत्याचार नहीं कर सकता। बड़ा कठोर है वह, दुष्ट को कभी क्षमा नहीं करता। इसलिये वेद ने आग्रह किया है–

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहु कस्मैदेवाय हविषा विधेम।। ऋ. वेद 10।121।4

हे मनुष्यों ! बर्फ से आच्छादित पहाड़, नदियाँ, समुद्र जिसकी महिमा का गुणगान करते हैं। दिशायें जिसकी भुजायें हैं हम उस विराट् विश्व पुरुष परमात्मा को कभी न भूलें।

गीता के ''येन सर्वविदं ततम'' अर्थात् ''यह जो कुछ है परमात्मा से व्याप्त है'' की विशद व्याख्या करते हुये योगीराज अरविन्द ने लिखा है–

'यह सम्पूर्ण संसार परमात्मा की ही सावरण अभिव्यंजना है। जीव की पूर्णता या मुक्ति और कुछ नहीं भगवान् के साथ चेतना, ज्ञान, इच्छा, प्रेम और आध्यात्मिक सुख में एकता प्राप्त करना तथा भगवती शक्ति के कार्य सम्पादन में अज्ञान, पाप आदि से मुक्त होकर सहयोग देना है। यह स्थिति उसे तब तक प्राप्त नहीं होती जब तक आत्मा अहंकार के पिंजरे में कैद है, अज्ञान में आवृत है तथा उसे आध्यात्मिक शक्तियों की सत्यता पर विश्वास नहीं होता। अहंकार का जाल, मन, शरीर, जीवन, भाव, इच्छा, विचार, सुख और दुःख के संघर्ष, पाप, पुण्य, अपना पराया आदि के जटिल प्रपंच मनुष्य में स्थित एक उच्चतर आध्यात्मिक शक्ति के ब्रह्म और अपूर्ण रूपमात्र हैं। महत्ता इसी शक्ति की है, मनुष्य की नहीं, जो प्रच्छन्न रूप से आत्मा में अधिगत है।''

योगीराज के इस निबन्ध से तीन अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त व्यक्त होते हैं। (1) यह जो संसार है परमात्मा से व्याप्त है उसके अतिरिक्त और सब मिथ्या है, भ्रम है, स्वप्न है। (2) मनुष्य को उसकी इच्छानुसार सृश्टि–संचालन के लिये कार्य करते रहना चाहिये। (3) मनुष्य में जो श्रेष्ठता, शक्ति या, सौन्दर्य है वह उसके दैवी गुणों के विकास पर ही है।

मनुष्य जीवन के सुख और उसकी शान्ति के लिये इन तीनों सिद्धान्त का पालन ऐसा ही पुण्य फलदायक है जैसा त्रिवेणी स्नान करना। मनुष्य दुष्कर्म अहंकार से प्रेरित होकर करता है पर वह बड़ा क्षुद्र प्राणी है, जब परमात्मा की मार उस पर पड़ती है तो बेहाल होकर रोता चिल्लाता है। सुख तो उसकी इच्छाओं के अनुकूल सात्विक दिशा में चलने में, प्रातिक नियमों के पालन करने में ही है। अपनी क्षणिक शक्ति के घमण्ड में आया हुआ मनुष्य कभी सही मार्ग पर नहीं चलता इसीलिये उसे सांसारिक कष्ट भोगने पड़ते हैं। परमात्मा ने यह व्यवस्था इतनी शानदार बनाई है कि यदि सभी मनुष्य इसका पालन करने लगें तो इस संसार में एक भी प्राणी दुःखी और अभावग्रस्त न रहे।

ईश्वर उपासना मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है। नदियाँ जब तक समुद्र में नहीं मिल जातीं अस्थिर और बेचैन रहती हैं। मनुष्य की असीमता भी अपने आपको मनुष्य मान लेने की भावना से ढकी हुई है। उपासना विकास की प्रक्रिया है। संकुचित को सीमा रहित करना, स्वार्थ को छोड़कर परमार्थ की ओर अग्रसर होना, ''मैं'' और मेरा छुड़ाकर 'हम' और 'हमारे' की आदत डालना ही मनुष्य के आत्म–तत्व की ओर विकास की परम्परा है। यह तभी सम्भव है जब सर्वशक्तिमान परमात्मा को स्वीकार कर लें, उसकी शरणागति की प्राप्ति हो जाय। मनुष्य रहते हुए मानवता की सीमा को भेदकर उसे देवस्वरूप में विकसित कर देना ईश्वर की शक्ति का कार्य है। उपासना का अर्थ परमात्मा से उस शक्ति को प्राप्त करना ही है।

जान–बूझकर या अकारण परमात्मा कभी किसी को दण्ड नहीं देता। प्रति की स्वच्छन्द प्रगति प्रवृत्ति में ही सबका हित नियन्त्रित है। जो इस प्रातिक नियम से टकराता है वह बार–बार दुःख भोगता है और तब तक चैन नहीं पाता जब तक वापस लौटकर फिर उस सही मार्ग पर नहीं चलने लगता। भगवान् भक्त की भावनाओं का फल तो देते हैं किन्तु उनका विधान सभी संसार के लिये एक जैसा ही है। भावनाशील व्यक्ति भी जब तक अपने

पाप की सीमायें नहीं पार कर लेता तब तक अटूट विश्वास, ढ़ निश्चय रखते हुए भी उन्हें प्राप्त नहीं कर पाता।

अपने से विमुख प्राणियों को भी वे दुःख दण्ड नहीं देता दुःख दण्ड देने के लिए शक्ति तो उसके विधान में ही है। मनुष्य का विधान तो देश, काल और परिस्थितियों वश बदलता ही रहता है। किन्तु उसका विधान सदैव एक जैसा ही है। भावनाशील व्यक्ति भी उसकी चाहे कितनी ही उपासना करे सांसारिक कर्त्तव्यों की अवहेलना कर या दैवी–विधान का उल्लंघन कर कभी सुखी नहीं रह सकते। जैसा कर्मबीज वैसा ही फल यह उसका निश्चल विधान है। दूसरों का तिरस्कार करने वाला कई गुना तिरस्कार पाता है। परमार्थ उसी तरह लौटकर असंख्य गुने सुख पैदाकर मनुष्य को तृप्त कर देता है। सुख और दुःख, बन्धन और मुक्ति मनुष्य के कर्म के अनुसार ही प्राप्त होते हैं। दुष्कर्मों का फल भोगने से मनुष्य बच नहीं सकता इस विधान में कहीं राई रत्ती भर भी गुंजाइश नहीं है।

अशुभ कर्मों का सम्पादन और देह का जड़ अभिमान ही मनुष्य को छोटा बनाये हुये है। शुभ–अशुभ कार्यों के फलस्वरूप सुख–दुःख का भोक्ता न होने पर भी आत्मा मोह वश होकर दुःख भोगती है। मैं देह हूँ ''मुझे सारे अधिकार मिलने ही चाहिये'' यह मान लेने से जीव स्वयं कर्ता–भोक्ता बन जाता है और इसी कारण वह ''जीव'' कहलाता है। जब तक वह इतनी –सी सीमा में रहता है तब तक उसकी शक्ति भी उतनी ही तुच्छ और संकुचित बनी ही रहती है। जब वह इस भ्रम रूप देहाध्यास का परित्याग कर देता है तो वह शिव–स्वरूप, ईश्वर–स्वरूप हो जाता है। उसकी शक्तियाँ विस्तीर्ण हो जाती हैं और वह अपने आपकों अनन्त शक्तिशाली, अनन्त आनन्द में लीन हुआ अनुभव करने लगता है।

अपनी तुच्छ सत्ता को परमात्मा की शरणगति में ले जाने से मनुष्य अनेकों कष्ट–कठिनाइयों से बच जाता है। गृहपति की अवज्ञा करके जिस तरह घर का कोई भी सदस्य सुखी नहीं रह सकता उसी प्रकार परमात्मा का विरोधी भी कभी सुखी या सन्तुष्ट नहीं रह सकता। परमात्मा की अवमानना का अर्थ है उसके सार्वभौमिक नियमों का पालन न करना। अपने स्वार्थ, अपनी तृष्णा की पूर्ति के लिये कोई भी अनुचित कार्य परमात्मा को प्रिय नहीं। इस तरह की क्षुद्र बुद्धि का व्यक्ति ही उसके कोप का भाजन बनता है पर जो विश्व–कल्याण की कामना में ही अपना कल्याण मानते और तदनुसार आचरण करते हैं। ईश्वर के अनुदान उन्हें उसी तरह प्राप्त होते हैं जैसे कोई पिता अपने सदाचारी, आज्ञा पालक और सेवा भावी पुत्र को ही अपनी सुख–सुविधाओं का अधिकांश भाग सौंपता है।

पापों का नाश हुये बिना, इन्द्रियों का दमन किये बिना, अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होती। संसार में रहते हुये मनुष्य कर्मों से भी छुटकारा नहीं प्राप्त कर सकता। निष्काम कर्मयोग परमात्मा की प्राप्ति और सांसारिक सुखोपभोग का सबसे सुन्दर और समन्वययुक्त धर्म है। निष्काम भावनाओं में पाप नहीं होता वरन दूसरों के हित की, कल्याण की और सबको ऊँचे उठाने की विशालता होती है जिससे अन्तःकरण की पवित्रता बढ़ती है और सुख मिलता है अतएव प्रत्येक मनुष्य को संसार समर का योद्धा बनकर ही जीवन यापन करना चाहिए। वह साहस वह गम्भीरता और वह कार्य करने की भावना मनुष्य ब्रह्म ज्ञान और ब्रह्म सान्निध्यता में ही प्राप्त करता है।

स्वप्निक ब्रह्माण्ड और निजघर परमधाम

विनोद प्रसाद तिम्सिना (प्रेमी), काठमान्डो, नेपाल

इस स्वप्निक (जागनी) ब्रह्माण्ड में आई हुई ब्रह्म आत्माओं को अपने जीवन पर्यन्त अपने निजघर व अनादि अक्षरातित धाम वापस जाना है। लेकिन रंगमहल मूल मिलावा में रहकर असत्, जड़, दुःख का खेल देखने की इच्छा के बारे में श्री राज जी से बात करते वक्त, जब श्री राज जी ने मना करते हुवे स्वप्निक ब्रह्माण्ड में होने वाले विपरीत परिस्थितियों व कठिनाइयों का जिक्र करते वक्त, उन बाधाओं को सरलता से पार करने का दावा किया था। उस दावे को परखने के लिए श्री राज जी ने माया के द्वारा बड़ी बड़ी भुलभुलैया व कठिनाईयों को खड़ा कर दिया गया है। ब्रह्म आत्माओं को उन तमाम कठिनाइयों व बिपत्तियों के बेड़े को झेलकर पार लगाने के बाद ही निजघर मिलेगा।

लेकिन ज्यादातर ब्रह्म आत्माएं इस स्वप्निक ब्रह्माण्ड में आकर सुध–बुध खोकर भटकी हुई हैं। इस अमूल्य मनुष्य जीवन को जानवरों की तरह आहार, निन्द्रा, भय और मैथुन जैसे तुच्छ व्यवहार में व्यतीत कर रहें हैं। जैसा

"आहार निन्द्रा भय मैथुनं च, सामान्यमेतत्पशु भिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभि समानाः।।"

इसका मतलब आहार, निद्रा, भय एवं मैथुन पशु में भी समान है। मनुष्य चेतनशील होने के नाते धर्म और परमात्मा की खोज करता है और अपने को परमात्मा के साथ जोड़ने का प्रयत्न करता है। धर्म से चेष्टा रहित मनुष्य को पशु के समान माना जाता है। क्योंकि सत्य धर्म ही ऐसी विधी है, जो मनुष्य को सत्, चिद, आनन्द, युक्त परमात्मा के साथ जोड़ पाती है।

जब तक मनुष्य अपने जीवन को धर्म व परमात्मा के पाने के चिन्तन में नहीं लगा पाएगा, तब तक उसका जीवन पशु के तरह ही व्यतीत किया हुआ माना जाता है। आत्मा को सत्, चिद, आनन्द–सचिदानन्दमय सुख का अनुभव कराने वाली विधी को धर्म कहा जाता है। इसि विधी से वो परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। और मनुष्य तन का परमात्मा प्राप्ति के लिए उपयोग ही सर्वोपरि है।

दुनिया में सदियों पहले से पुर्वीय धर्म ग्रन्थ वेद, उपनिषद, पुराण, भागवत, महाभारत और पाश्चात धर्म के कतेब, तौरेत, जंबूर, अंजील आदि जैसे ग्रन्थ में मनुष्य को उन अनादि परमात्मा को परा प्रेम लक्षणा के साथ अनन्य भक्ति करने का सलाह देकर परामात्मा कब, कैसे, कहां, किस तरह और किस वजह से आ रहे हैं की अनेक भविष्य वाणियां व रहस्यमय शब्दों मे लाखों प्रकार के संकेत किया गया है। और उन धर्म ग्रन्थों के संकेतों को सत्य साबित करते हुये अब सचिदानन्द परमात्मा का आवेश इस कलियुग में श्री महम्मद साहेब, श्री देवचन्द्र जी व श्री मिहिरराज जी के तन के आवरण में उतर आए हैं। उन अनादि अक्षरातीत परमधाम और उनके निजधाम

के बारे में उल्लेख करते हुये श्री तारतम सागर (जिसको श्री कुलजम स्वरुप व पांचवा वेद भी कहा गया है) में उन तमाम धर्म ग्रन्थों के संकेत जैसे निशकलंक बुद्ध अवतार, कल्की अवतार, आखिर इमाम मेंहदी और सेकेन्ड क्राइष्टका आगमन और कयामत की घड़ी जैसे कड़ीओं को गुह्य संकेतमें प्रामाणिक प्रमाण सहित स्पश्ट किया गया है। ऐसा माना जाता है, कुरान में उन प्रमाण के संकेतों को समझते हुए औरङ्गजेब जैसे तत्कालीन भारत के मुगल सम्राट ने अपने पुत्रों के नाम, श्री प्राणनाथ जी को खुदा का हवाला देते हुए पत्र लिखा है।

ब्रह्म आत्माओं का निजधाम कहां और कैसा होगा, इसका छोटा संकेत निम्न चौपाई से भी मिलता है।

"वेद थके ब्रह्मा थके, थकि गए शेष महेश।
गीता को जहा गम नहीं वह सतगुरु को देश ।
चांद, सुरज को गम नहीं, नहीं पावक को काम। पहुंचे सो आवे नहीं, सोई मुकुन्द निजधाम ।।"

ब्रह्म आत्माओं का लक्ष्य परमधाम (निजधाम) और वहां का निजानन्द प्राप्त करना है। इसके लिए उनको इस नश्वर ब्रह्माण्ड का भौतिक सुखों से विमुख होकर परित्याग करते हुए श्री धाम धनी के प्रेम में खुदको डूबना और डुबाना होगा।

इस कलियुग में सत्, चिद, आनन्द, युक्त परमात्मा का पदार्पण होने के नाते पुरस्कार स्वरुप संसार के जीवों को भी अखण्ड हो पाने का सौभाग्य मिला हुआ है। इसका प्रमाणः

सतजुग के बीज भूत,
इनो बीच रहे विस्तार।
होवे सब में जाहिर, अखण्ड ए संसार ।।
श्री लालदास जी बीतक २/२०

उन अकथ, अगम के अनादि अक्षरातीत परमात्मा इस धरती में आने के उपलक्ष्य से उपहार स्वरुप इस स्वप्निक संसार के जीव सृष्टि भी अखण्ड होने का उपहार पाकर धन्य धन्य होने वाले हैं। ये उनको मिला हुआ सौभाग्य है और इस सौभाग्य को हासिल करना है और नहीं करना है, ये तो उस जीव की चेतनशीलता और प्रयास पर निर्भर है।

लेकिन परब्रह्म की माया शक्ति इतनी जबरदस्त शक्तिशाली है कि बड़े बड़े को परब्रह्म की तरफ जाने वाले रास्ते से हटा देती है। इसका पार त्रिदेव भी नहीं कर पाए। दुनिया में परिवार, धनदौलत, पद, शान, शौकत, पराक्रम, सुन्दरता आदि सब उसी माया के औजार हैं। और हम उसके किसी न किसी औजार के फन्दे में पड़कर परमात्मा सें दूर हो जा रहे है।

आज निजानन्द सम्प्रदाय के दर्शन के साधकों के साथ साथ आम आस्तिककों का भी यही हाल हो रहा हैं। क्योंकि श्री बीतक साहेब, श्री तारतम सागर में दुनिया के सब धर्म शास्त्र के गुह्य रहस्य और संकेत को उजागर करके तमाम उलझन को साफ करने के बाद भी असंख्य लोग कर्मकाण्ड (शरियत) के अन्धविश्वाश मे माथे ठोक ठोक कर लहुलुहान हो रहे हैं और शास्वत परमात्मा के सन्देश पर विश्वास करना मुश्किल हो रहा है।

ऐसे भी बहुत हैं, जो शाश्वत परमात्मा के सन्देश को आत्मसात करके खुदको उस अनादि परमात्मा पर न्योछावर होते हुए ब्रह्म आत्माएं निजधाम व परमधाम में जाग्रित हुए हैं और जीव सृष्टी की आत्मा भी अपने को बेहद में अखण्ड कर पाई है। आइए हम सब भी सच्चिदानन्द परमात्मा के अखण्ड सन्देश को मन, वचन और कर्म से आत्मासात करके श्री धाम धनी पर न्योछावर होते हुए खुद को धन्य धन्य करें।

षटऋतु

बब्बू, अबोहर

अपने प्राणेश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए शुद्ध हृदय से निकलने वाली आहों का घनीभूत रूप है विरहा। यह प्रेम से पूर्व की अवस्था है।

विरह आत्मा का धर्म नहीं है। बल्कि यह समर्पण की पराकाश्ठा को प्राप्त हुए जीव के शुद्ध हृदय से उठने वाली पुकार है जो अपने सर्वस्व को पाकर उसके रस भरे अपने प्रेमास्पद का निर्धारण हो जाता है और विश्वास समर्पण और श्रद्धा आदि परिपक्व हो जाते हैं तो उससे विरह की वह स्वर्णिम धारा प्रवाहित होती है, जिसका रसास्वादन कर लेने वाला प्रेम के पवित्र आंगन में विहार करने का अधिकार प्राप्त कर लेता है।

विरह के फूलों से निकलने वाली सुगंध इतनी मादक होती है कि एक साधारण प्राणी तो क्या बड़े से बड़ा योगीराज भी इसकी थोड़ी सी सुगंध से बेसुध हो जाता है। यह इस संसार की सबसे अनमोल वस्तुओं में से जैसे ज्ञान, एकत्व, सौन्दर्य और आनन्द आदि में से एक है। और अध्यातम का महल भी इसी की नींव पर खड़ा होता है।

हद के जीवों के लिए विरह का रस प्राप्त कर पाना बहुत ही कठिन है। यह तो बेहद मण्डल की ईश्वरी सृश्टि और परमधाम की आत्माओं की सम्पदा है। यद्यपि परमधाम में विरह की लीला नहीं है, किन्तु जिस जीव पर ब्रह्म आत्माओं की सुरता विराजमान होती है, मात्र उसे ही विरह का वास्तविक रस चखने का सौभाग्य प्राप्त होता है जन्म मरण की अग्नि में जलने वाले जीव तो विरह के नाम से ही भागते हैं। बेहद की ईश्वरी सृश्टि भी ब्रह्मसृश्टियों की तरह विरह रस का रसास्वादन नहीं कर पाती हैं, यद्यपि वह इस मार्ग पर चलती अवश्य है।

ब्रह्मवाणी में सात प्रकार के विरह का वर्णन आता है, जिसमें रास में दो प्रकार का विरह– पहला विरह ब्रज से रास में जाने के समय का है, जिसमें गोपियों के रूप में आयी ब्रह्मात्माओं को पूरे 52 दिन का वियोग झेलना पड़ता है और दूसरी प्रकार का विरह जिसमें सखियाँ अपने धाम धनी के साथ तरह–तरह की रामतें कर रही होती हैं, किन्तु अचानक ही उन्हें विरह का असहन कश्ठ झेलना पड़ता है।

प्रकाश गुजराती और प्रकाश हिन्दुस्तानी में एक ही प्रकार का विरह है, जो हब्से में जागृत हो जाने के पश्चात श्री इन्द्रावती जी द्वारा किया जाता है।

षटऋतु में दो प्रकार का विरह है। पहला विरह उस समय का है जब श्री मिहिरराज जी नवतनपुरी में 2 वर्श और 2 वर्श कला जी के यहां रहे थे। तब एक ही नगरी में रहते हुए न तो धनी श्री देवचन्द्र जी ने इन्हें बुलाया और न ही यह जा सके। दूसरे प्रकार के विरह में उस अवस्था का वर्णन है जब धनी श्री

देवचन्द्र जी का अन्तर्धान हो जाता है।

कलश हिन्दुस्तानी में विरह तामस का वर्णन है, जो हब्से के अन्दर का है। तामस का विरह यानि अगर मेरे प्राणेश्वर अभी मेरे सामने नहीं आए तो मैं अपना तन त्याग दूंगी। सनन्ध ग्रन्थ में भी यही स्थिति है।

सिन्धी ग्रन्थ का जो विरह है, वह परमधाम की चारों किताबों खिल्वत, परिक्रमा, सागर और श्रृंगार के अवतरण के पश्चात का विरह दर्शाया है कि ज्ञान की पूर्णता के पश्चात प्रियतम अक्षरातीत को अपने धाम हृदय में बसाने के लिए क्या करना चाहिए।

किन्तु षटऋतु की वाणी में अति गहन विरह की स्थिति का चित्रण हुआ है क्योंकि जब श्री मिहिरराज जी अरब से लौटकर आते हैं तो बालबाई के दबाव के कारण धनी श्री देवचन्द्र जी मिहिरराज का प्रणाम स्वीकार नहीं करते। विवश होकर श्री मिहिरराज जी वापिस लौट जाते हैं कि जब तक सद्गुरू खुद मुझे नहीं बुलाऐंगे, तब तक मैं नहीं आऊंगा।

अब श्री मिहिरराज जी का विरह फूट पड़ता है। जिसे षटऋतु में 12 महीनों में 2–2 माह की छः ऋतुओं के रूप में वर्णित किया गया है। उन ऋतुओं में प्रकृति के मनोरम दृश्यों को देखकर श्री मिहिरराज जी का विरह और बढ़ जाता है, वह दर्शाया गया है।

वह 6 ऋतुऐं हैं– वरखा रूत, सरद रूत, हेमंत रूत, सीत रूत, बसन्त रूत, ग्रीष्म रूत और अधिक मास।

सुन्दरसाथ जी इन सब ऋतुओं में कैसे श्री मिहिरराज जी द्वारा विरह किया गया है कि वह एक ही नगरी में रहते हुए भी अपने प्रियतम से मिल नहीं पाते। चाहते तो वह धनी श्री देवचन्द्र जी के पास और बैठे रहते कि जब तक आप मुझे दर्शन नहीं देंगे, तब तक मैं यहां से नहीं जाऊंगा, तो क्या श्री देवचन्द्र जी जिनके अन्दर साक्षात् अक्षरातीत विराजमान हैं, वह इतने निश्ठुर हो सकते हैं? यहाँ एक प्रश्न चिन्ह खड़ा होता है कि जिस तन के अन्दर अक्षरातीत विराजमान हों, क्या वह ऐसी लीला कर सकते हैं?यह भी एक अक्षरातीत की अपनी लीला है। लेकिन यह धाम धनी धनी की अपनी लीला थी, जिसको इस मानवी बुद्धि से समझा नहीं जा सकता।

यह लीला उन्होंने श्री मिहिरराज जी के अन्दर विरह लाने के लिए की, क्योंकि इससे आगे की भूमिका तैयार होनी थी। आगे जाकर उसी तन में बैठकर धाम धनी को लीला करनी थी। तो उस तन को विरह की भट्ठी में तपाकर कुन्दन बनाना था। क्योंकि जिस तन में धनी की शक्ति विराजमान होती है, उस तन को कुन्दन बनना पड़ता है, जैसे कि हम देखते हैं कि बड़े महाराज जी से कितनी कसनी करवाई गई। कई–कई दिन उन्हें भूखा भी रहना पड़ा। तन पर कोई कपड़ा भी नहीं रहता। जिस तन से धाम धनी की अवेश शक्ति विराजमान होती है, वह तन कभी भी आराम से नहीं बैठ सकता। वैसे भी जागनी लीला में यह हमारे लिए भी एक उदाहरण है कि हम सभी भी जब भी आश्रम में कहीं भी कोई प्रोग्राम होता है तो हम भी यह सोचकर बैठ जाते हैं कि हमें कौन सा वहां से कोई फोन आया है, हम क्यों जाऐं। सुन्दरसाथ जी राज जी का जहां भी कोई कार्यक्रम हो तो हमें बिना बुलाए वहां पहुंच जाना चाहिए। इसी तरह श्री मिहिरराज जी भी वहां विरह में तो तड़पते रहे, लेकिन श्री देवचन्द्र जी से मिलने नहीं गए।

उन्हें हर ऋतु तड़पाती है, जैसे आशाढ़ के महीने में वर्षा ऋतु होती हैं मोर और कोयल की दर्द भरी आवाज श्री मिहिरराज जी को और तड़पा रही है और वह कहते हैं कि पपीहा भी पिऊ पिऊ का रट लगा रहा है, शीतल मन्द हवाओं के झोंके मुझे और तड़पा रहे हैं।

शरद ऋतु बहुत ही सुहावनी है। वर्शा ऋतु में जो चारों ओर मटमैला जल बह रहा था अब साफ सुथरा जल दिखाई दे रहा है। श्री इन्द्रावती जी की आत्मा प्रेम भरा व्यंग्य भी करती है कि जैसे पर्वतों से झरने के रूप में पानी आता है, जो निरन्तर प्रवाहित होता है, तो आपके हृदय रूपी पर्वत से मेरे हृदय रूपी झरनें में जल नहीं आ सकता?क्या आपका हृदय इन चट्टानों से भी ज्यादा कठोर है। आप तो सकल गुण निधान है, सर्वशक्तिमान हैं, करूणा के सागर हैं, क्या आप मेरे अपराधों को क्षमा नहीं कर सकते।

हेमन्त ऋतु में मन्द मन्द हवा के झोंके मुझे ऐसे कश्टकारी लग रहे हैं, जैसे एक सौत अपने पति के प्रेम को दर्शाते हुए विरहणी के हृदय को व्यथित कर रही हो। इन्द्रावती जी कह रही हैं कि जब तक मुझे आपकी पहचान नहीं थी, तब तक मैंने आपके विरह के अनन्त दुःख को सहन कर लिया किन्तु अब तो मुझे यह स्पष्ट पहचान हो गई है कि आपके स्वरूप में साक्षात श्री राज जी ही लीला कर रहे हैं। तो ऐसी स्थिति में आपके विरह के कष्ट को सह पाना मेरे लिए सम्भव नहीं है।

अण ने जाण्या रे दुख अनंत सझा, पण
जाण्युं दुख केम खमाय।
वाला जी विना रे हवे जो घड़ी, ते ता जीवने
कठण धणुं जाय ।।

सुन्दरसाथ जी इस चौपाई से हमें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि कई सुन्दरसाथ यह मानते हैं कि राज जी इस जगत में आए ही नहीं। यदि राज जी इस जगत में नहीं आए तो यह जागनी लीला किसने की?महामति जी तो कह रही हैं कि आपके स्वरूप की पहचान हों जाने के बाद मेरे लिए रह पाना ही असम्भव है। क्या श्री मिहिरराज जी द्वारा श्री देवचन्द्र जी के धाम हृदय में और श्री छत्रशाल जी द्वारा श्री महामति जी के धाम हृदय में अक्षरातीत की पहचान निरर्थक थी?

ऐसे ही श्री मिहिरराज जी के जीव ने हर ऋतु में अपने धनी के वियोग में विरह किया, तो हमें भी षटऋतु की वाणी को आत्मसात करने के बाद धनी के विरह में हर दिन हर राज गुजारनी चाहिए, तब ही हमारा जीवन सार्थक होगा। क्योंकि जब तक हम अपने जीव को विरह की भट्ठी में नहीं जलाऐंगे, तब तक हमारे हृदय से संशय रूपी बादल नहीं हटेंगे। विरह की बूंदों से ही हम अपने हृदय को निर्मल बना सकते हैं और जब हृदय निर्मल होगा तब ही धाम धनी की बैठक हमारे हृदय में होगी।

जिस प्रकार वर्षा ऋतु में बादलों के बरसते ही बरसाती कीड़े का रंग लाल हो जाता है उसी प्रकार आप से प्रेम पूर्वक गले मिलते ही मैं भी प्रेम के रंग में रंग जाऊंगी प्रेम का रंग क्या होता है– लाल। इसी का दृष्टान्त देकर श्री इन्द्रावती जी की आत्मा प्रेम में डूब जाने की इच्छा करती हैं। इसी प्रकार किसी कवि ने भी कहा है कि

लाली मेरे लाल की,
जित देखूं तित लाल ।
लाली देखन मैं गई,
मैं भी हो गई लाल ।।

सुन्दरसाथ जी यह षटऋतु की वाणी हमें विरह में डूबने का सन्देश दे रही है। हमें भी श्री मिहिरराज जी की तरह हर ऋतु में कुछ न कुछ सीखकर अपने प्राणवल्लभ के प्रेम मे विलीन होना होगा, तभी हम अपने हृदय में अक्षरातीत के सुखों का रसास्वादन कर पांयेगे।

वृक्ष पर बैठे मुर्गे की चोंच में मिट्टी

बबली, सरसावा

वाणी तो हम सब पढ़ते ही हैं और हमारी जिन्दगी बीत गई कई पाठ पढ़ते पढ़ते। जब हम वाणी पढ़ते हैं तो ध्यान से भी पढ़ते हैं पर वाणी को कई चौपाईयों के अर्थ हम खोल नहीं पाते। पढ़ तो जाते हैं पर क्या मायने छिपा है क्या गुझ रहस्य है चौपाई में समझ नहीं पाते। खुलासा की चौपाई है–

चुटकी खाक ले चोंच में,
मुरग बैठा दरखत पर ।
पर ना जले इन मुरग के,
सो कोई देवे एह खबर ।। खु. 3/60

कई बार पढ़ चुके इस चौपाई को पर समझ न पाये मुरग किसे कहा है। दरखत–वृक्ष का तात्पर्य कया है। वृक्ष पर बैठे हुए मुर्गे ने चोंच में चुटकी भर मिट्टी दबा रखी है। मुर्गे के पंख क्यों नहीं जल रहे है?धनी की अपार मेहर से श्री राजन स्वामी जी ने खुलासा ग्रन्थ का टीका करके इस गुह्य आलंकारिक कथन का रहस्य समझा दिया है। इस रहस्य को मात्र ब्रह्मसश्टियां ही प्रकाशित कर सकती है। **''सो मोमिन खोले मारफत ।।''**

मुर्गा किसको कहा है यह जानने के लिए हमें परमधाम की ओर चलना होगा। हद–बेहद से परे वह स्वलीला अद्वैत परमधाम है जहां के कण–कण में सच्चिदानन्द परब्रह्म की लीला होती है।

श्री राज जी, श्यामा जी, सखियां, अक्षर ब्रह्म और महालक्ष्मी इन पांचों का एक अद्वैत स्वरूप है। श्यामा जी आनन्द अंग है और अक्षर ब्रह्म सत् अंग।

अक्षरातीत का हृदय मारिफत का स्वरूप है। वह ही हकीकत के रूप में श्यामा जी, सखियां, अक्षर ब्रह्म तथा महालक्ष्मी एवं पच्चीस पक्षों के रूप में क्रीडा कर रहा है। किन्तु इस भेद का पता सखियों, श्यामा जी या अक्षर ब्रह्म में से किसी को भी नहीं था। धाम धनी ने अपने दिल में यह बात ली कि श्यामा जी तथा सखियों को मैं इस बात की पहचान कर दूं कि उनका रूप मेरा ही स्वरूप है तथा उनके अन्दर मेरा ही प्रेम (इस्क) है। अक्षरातीत ने पहले दिल में यह इच्छा ली कि रूहों को पहचान करा दूं।

एक पातसाही अर्स की,
और वाहेदत का इस्क ।
सो देखलावने रूहों को,
पेहेले दिल में लिया हक ।।

जब मूल स्वरूप श्री राज जी ने मेहर का दरिया दिल में लिया तो रूहों के दिल में खेल देखने का ख्याल उपजा। अपने स्वरूप की पूर्ण पहचान अर्थात् (वहदत, निस्बत, खिल्वत, इश्क आदि की मारिफत) को दर्शाने के लिये ही धाम धनी ने खेल देखने की इच्छा पैदा की, जिसके परिणाम स्वरूप अक्षर ब्रह्म ने परमधाम की लीला देखने की इच्छा की तथा ब्रह्मसृश्टियों ने माया देखने की। श्री राज जी के दिल की इच्छा (हुकम) से यह खेल बना है, इसलिए ये इसे हुकम का खेल (वृक्ष) कहा गया है।

चुटकी खाक ले चोंच में,
मुरग बैठा दरखत पर ।

इस खेल में श्यामा जी की आत्मा को मुर्गा कहा है। वृक्ष पर बैठे हुए मुर्गे ने अपनी चोंच में चुटकी भर मिट्टी दबा रखी है अर्थात् श्यामा जी की आत्मा ने मानव तन धारण किया है। श्यामा जी का स्वरूप एकत्व (वाहेदत) में है, इसलिए ये उनके (मुर्ग के) पर नहीं जल सकते जबकि जिब्रील के पर जल जायेंगे अर्थात् जिब्रील वाहेदत में प्रवेश करने में असमर्थ है।

श्यामा जी की ही अंगरूपा सभी आत्मायें है। देवचन्द्र जी के तन में श्यामा जी की आत्मा सभी आत्माओं के साथ इस खेल में आई। सबने ही मानव तन को धारण किया। उन्होंने खेल देखने का गुनाह किया इसलिये ही सब ही मिट्टी का मानव तन धारण करना पड़ा है। श्यामा जी की आत्मा अब देवचन्द्र जी के तन में नहीं। अब श्यामा जी के दूसरे तन (मिहिरराज जी) में श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में लीला हो रही है।

रूह अल्ला दो जामे पेहेरसी,
दूसरे ऊपर मुद्दार ।
सोई इमाम मेंहेदी,
याकी बुजरकी बेशुमार ।।

माहेश्वर तन्त्र 26/7,8 का यह कथन देखिए जिसमें भगवान शिव कह रहे हैं कि मैंने 5000 दिव्य वर्शों की समाधि लगायी। उसमें जो ज्ञान प्राप्त हुआ, वहीं मैं तुम्हें (पार्वती को) सुना रहा हूँ।

इति तर्कयता देवि समाधिर्हि मया धृतः ।
तस्मिन् युग सहस्त्राणि व्यतीयुः पंच सुन्दरि ।।
समाधिस्थेन देवेशि श्रतमीश्वर भाशितम् ।
तच्छ्रूत्वा हृदयं देवि निर्विकल्पम भून्मम ।।

हस सब जानते हैं श्री राज जी अक्षरातीत परमधाम में रहते हैं और शिव जी की पहुंच यही योगमाया तक है। वह 5000 वर्शों की समाधि लगा सकते हैं तो मिहिरराज जी के अन्दर विराजमान श्री प्राणनाथ जी की समाधि कितने वर्शों तक लग सकती है। यदि अक्षरब्रह्म की सुरता रूप भगवान शिव 5000 दिव्य वर्शों की समाधि लगा सकते हैं तो श्री महामति जी को तो समाधिस्थ हुए मात्र लगभग 325 वर्श ही हुए हैं और अभी भी उनका शरीर है उनका शरीर अब भी पूर्ववत ही है। कहा है गुम्मट जी में नीचे समाधिस्थ अवस्था में बैठे हैं। प्रकृति की मर्यादा निभाने के नाटक रूप में अपनी अन्तर्धान लीला को दर्शाने के पश्चात् श्री प्राणनाथ जी एक वर्श तक महाराजा छत्रसाल जी श्री लालदास जी तथा मुकुन्द दास जी आदि से प्रत्यक्ष वार्ता करके उन्हें आनन्दित कर सान्त्वना देते रहे। तत्पश्चात् अखण्ड ध्यान में लीन हो गये जिस क्षण उनका तन चैतन्यता से रहित होगा, उसी क्षण प्रलय हो जायेगा और इस संसार का भी अस्तित्व समाप्त हो जायेगा और चौदह लोकों का यह ब्रह्माण्ड अखंड हो जायेगा। आत्माएं परमधाम चली जायेगी।

आज हम पन्ना जी गुम्मट जी किस भाव से जाते हैं वहां पर श्री प्राणनाथ जी विराजमान हैं। अखण्ड ध्यान में लीन हैं। कई सुन्दरसाथ कह देते हैं कि गुम्मट जी तो मात्र समाधि है और इसमें श्री राज जी की शक्ति या महामति जी की आत्मा नहीं है। सुन्दरसाथ को वाणी मन्थन, आत्म मन्थन करना चाहिए वाणी साफ पुकार रही है। जब तक यह ब्रह्माण्ड दिखाई दे रहा है तब तक ब्रह्मसृश्टियां भी यहीं हैं तथा उनके प्रियतम अक्षरातीत भी यहीं हैं।

जब मुसाफ हादी गिरो चली,
पीछे दुनी रहे क्यों कर ।
खेल किया जिन वास्ते,
सो जागे अपनी सरत पर ।।

इस संसार को दरिया कहा गया। दरिया को दूध के समान उज्ज्वल (सफेद) तथा मिश्री के समान मीठा कहा गया है। इसे परब्रह्म की कृपा से बनाया हुआ माना गया है। धाम धनी ने अपनी अपार मेहर से इस दरिया (संसार) को बनाया है जिसमें कभी भी अंधेरा होगा ही नहीं।

दरिया उजला दूध सा,
मेहेर मीठा मिश्री ।
ए दरिया कबूं न होए अंधेरा,
ए हकें रूहों पर मेहर करी ।।

इस नश्वर जगत में मिश्री से भी मीठी यह तारतम वाणी है जो श्यामा जी की रसना रूप है। यही कारण है कि इस संसार रूपी दरिया को दूध से भी अधिक उज्ज्वल तथा मिश्री से भी अधिक मीठा कहा गया है।

कुर्आन में लिखा है कि मोतियों (सखियों) के मुंह पर ताला था तथा उनके दिल में खेल मांग ने का गुनाह लगा था। सभी सखियों ने आपस में मिलकर एक मत में माया (फरामोशी, नींद) का खेल देखने की इच्छा की थी, इसलिये उन्हें गुनाह (दोश) लगा है। वे फरामोशी में बैठी थी किन्तु प्रेममयी कृपा के सागर प्रियतम अक्षरातीत खेल मांगने का गुनाह करने वाली इन आत्माओं के धाम हृदय में बैठ कर लीला कर रहे हैं।

मोतिन के मुँह ऊपर,
कुलफ लिख्या माहें फुरमान ।

जिस प्रकार परात्म के तनों में फरामोशी और गुनाह लगा है उसी प्रकार आत्मा के तनों में भी फरामोशी (नींद) और गुनाह लगा है क्योंकि वह परआतम की प्रतिबिम्ब स्वरूप है। ठीक यही स्थिति स्वरूप के निर्धारण में भी है। जिस तरह परात्म के हृदय धाम में अक्षरातीत का स्वरूप विराजमान है, उसी प्रकार आत्मा के भी धाम हृदय में प्रियतम विराजमान है।

इन गुन्हेगारों के दिल को,
अपना अर्स कर बैठे मेहरबान । खु. 3/70
कहया अर्स दिल मोमिन । खु. 3/74

इस समय परमधाम में मूल स्वरूप अक्षरातीत सिंघासन पर विराजमान सखियों को घेर कर बैठे इस नश्वर जगत का खेल दिखा रहे हैं और यहां आवेश स्वरूप से श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में लीला कर रहे हैं।

तुम ही उतर आए अर्स से, इत तुमहीं कियो मिलाप । श्र. 32/31

इस चौपाई के कथानुसार मूल स्वरूप श्री राज जी ही इस संसार में अपने आवेश स्वरूप से श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप में लीला कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में दोनों स्वरूपों में कोई भेद नहीं माना जा सकता। यद्यपि श्री प्राणनाथ जी के स्वरूप द्वारा सब सुन्दरसाथ को मूल स्वरूप का ही ध्यान कराया गया किन्तु यदि कोई श्री प्राणनाथ जी को आवेश स्वरूप मान कर उनका ध्यान करता है तो भी उसकी सूरता मूल स्वरूप में अवश्य केन्द्रित होगी।

हमें अपनी परात्म की भावना से आत्मा का श्रृंगार करके ही प्रणाम करना चाहिए। खिलवत के पहले प्रकरण में ही यह बात दर्शायी गयी है कि श्री राज जी के सम्मुख बैठे रहने पर भी मूल तनों से न तो देखा जा सकता है, न बोला जा सकता है और न सुना ही जा सकता है। यदि यह संशय करे कि हमने इन आंखों से श्री प्राणनाथ जी को देखा तो नहीं है, पुनः प्रणाम कैसे करें तो इसका समाधान यह है कि गुम्मट जी मन्दिर की सेवा (तख्त) पर यदि हम युगल स्वरूप का भाव लेकर प्रणाम करे तो वह प्रणाम अवश्य स्वीकार होगा, क्योंकि युगल स्वरूप श्री महामति जी के धाम हृदय में विराजमान हैं तथा मूल मिलावे में भी विराजमान हैं। उसी युगल स्वरूप की छवि को अपने धाम हृदय में बसाने का प्रयास करना चाहिए।

श्री प्राणनाथ जी के नाम पर बनाये गये काल्पनिक चित्रों को कभी भी प्रणाम नहीं करना चाहिए क्योंकि ये जामनगर राज्य के दो राजाओं के चित्र हैं जो श्री देवचन्द्र जी और श्री प्राणनाथ जी के रूप में प्रचारित किये जाते हैं। सार तत्व यही है कि हम श्री प्राणनाथ जी को मात्र युगल स्वरूप के रूप में ही देखें और उन्हीं का ध्यान करें।

कलियुग का बल

ज्योति, सरसावा

कुली बन देखो रे,
ए जो देखन आइयां तुम ।
खेल किया तुम्हारी खातिर,
सुनियो हो सृश्ट ब्रह्म ।।

सुन्दरसाथ जी स्वयं अक्षरातीत पूर्ण ब्रह्म परमात्मा किरंतन ग्रन्थ के 60 वें प्रकरण में सभी आत्माओं को जिस कलियुग में ब्रह्मात्माओं का आना हुआ उसके बल के बारे में पूर्ण पहचान कराकर समझा रहें हैं कि ब्रह्मज्ञान के सामने कलियुग का बल चल ही नहीं सकता। कलियुग का बल उन्हीं पर चलता है जो ब्रह्मज्ञान से सर्वथा दूर होते हैं। ऐतरेय ब्राह्माण ग्रन्थ में चारों युगों के बारे में लिखा है–

कलि भायानो भवति, संजिहानस्तु द्वापर।
उत्तिश्ठस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते
चरश्चरैवेति।।

अज्ञानता की नींद में शयन करने वाला कलियुग के समान है। ज्ञान पाकर बैठ जाने वाला द्वापर युग में रहने वाला। उठकर खड़े हो जाने वालें को त्रेतायुग की स्थिति में कहा जाता है। परब्रह्म को पाने के लिए दौड़ लगाने वाले को सतयुग की स्थिति में कहा जाता है।

' कलि शयानो भवति '' मानव के अज्ञानता रूपी नींद से सोने के कारण ही कलियुग पर उस अपना अधिकार जमा लेता है इसी कारण मानव को माया के झूठे सुख ही सच्चे लगते हैं। वह अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है। सृश्टि के प्रारम्भ से ही कलियुग रूपी अज्ञान बुद्धि के चिन्तन को माया के सुखों की ओर मोड़ देता है उसके साथ–साथ जीव भी धर्म के मार्ग से विमुख होकर अपने शरीर पर भी केन्द्रित हो जाता है यहीं से जन्म–मरण, सुख–दुःख का चक्र प्रारम्भ हो जाता है। सारा ब्रह्माण्ड ही अज्ञानता से भरा है। चारों ओर अहंकार, प्रतिशोध, लालच और आतंक ही दिखायी देता है। इन्द्रावती जी कहती हैं–

द्वैता ऐसा जोरावर, देखो व्याप रहया वैराट ।
काम क्रोध अहंकार ले, सब चले उल्टी बाट ।।

कलियुग रूपी राक्षस इतना शक्तिशाली है कि समस्त ब्रह्माण्ड में इसका शासन है। इसके वश में होने के कारण ही सब लोग काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकारों से भरे हुए हैं। इसका परिणाम यह होता है कि धाम धनी से विमुख होकर माया की तरफ चल रहे हैं।

इन्द्रियों के विशयों का सेनापति भी कलियुग है। विशयों का रस विश से भी अधिक भयंकर होता है। विशयों के रस का पान करने का लोभ होने के कारण ही व्यक्ति की भोगों में आसक्ति बढ़ती जाती है। वाणी में इन्द्रावती जी कह रही हैं–

वेद कतेब सबे मुख, जुग लिए सब जीत ।
मंत्र धातु करामात माही, पाक उत्तम पलीत ।।

वेद शास्त्र एवं कतेब ग्रन्थों में के जो प्रकाण्ड विद्वान हैं उन्होंने भी मन्त्रों की सिद्धियां, धातुओं एवं रसायनों के विशय में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर ली है। इसी कारण वह भी अन्तः करण द्वारा वह विद्वान परब्रह्म की प्राप्ति कर सकते थे उन्हीं को इस कलियुग ने मायावी सुखों के उल्टे मार्ग पर चला दिया है। सारे ब्रह्माण्ड में इसी कलियुग का ही दब–दबा है कोई भी इसके सामने सिर नहीं उठा पाता। ज्ञान भक्ति एवं वैराग्य के क्षेत्र में आगे माने जाने वाला सर्वश्रेश्ठ व्यक्ति को भी इसने माया में फसा लिया है। इस प्रकार शरीर न होते हुए भी यह कलियुग सभी को अपने बन्धन में बांध लेता है।

केती कहूं विध कलियुग की, अलेखे अप्रमान ।
वरना वरन मिने व्याख्या,
काहू न किसी की पहचान ।।

इन्द्रावती जी के अन्दर विराजमान अक्षरातीत धाम धनी कहते हैं कि कलियुग की वास्तविकता का मैं कहाँ तक वर्णन करूं किसी भी प्रकार के प्रमाण से इसका उल्लेख नहीं हो सकता सभी वर्णों में लोगों में इसकी ऐसी पैठ है कि कोई भी किसी की पहचान नहीं कर पाता। कलियुग रूपी महासागर की लहरों ने तो धर्म की मर्यादाओं को भी समाप्त कर दिया है।

सुन्दरसाथ जी इस पतन को रोकने के लिए आवश्यकता है एक सच्चे सद्गुरू की जो हमें उस पूर्ण ब्रह्म परमात्मा की पहचान करवा दें।

श्रुति स्मृति की साख दे, कहो तुम्हें समझाए ।
ग्राहक हो चित दे सुनो,
तो कलियुग भ्रम जाए ।।

धाम धनी कह रहे हैं कि श्रुतियों और स्मृतियों की अर्थात् सभी शास्त्र ग्रन्थों की साक्षियां देकर तुम्हें पूर्ण ब्रह्म परमात्मा की पहचान करवाई गयी है। जब अच्छे ग्राहक बनकर उस ज्ञान को ग्रहण करोगे तभी तुम्हें समझ में आएगा जब कोई भी व्यक्ति किसी भी वस्तु को खरीदने जाता है। अच्छी गुणवत्ता एवं मात्रा के विशय में पूरी जाँच पड़ताल करके तब उस वस्तु को खरीदता है। उसी प्रकार से अध्यात्म के मार्ग पर चलते हुए भी एक अच्छे ग्राहक हो कर चित्त देकर समझोगे तभी तुम्हारी कलियुग रूपी भ्रान्तियां दूर होंगी।

पोंहोचे नहीं कल बल कुली को,
कोई मिने चौदे भवन ।
ऐसो महाबली ताए उड़ावे,
बुद्ध जी एकै खिन ।।

ऐसे शक्तिशाली कलियुग का मुकाबला करने की शक्ति चौदह लोगों के ब्रह्माण्ड में किसी के पास नहीं है। ऐसे कलियुग को श्री प्राणनाथ जी (पूर्ण ब्रह्म परमात्मा, अक्षरातीत) एक ही क्षण में समाप्त कर सकते हैं। जिसके हृदय में श्री मुख वाणी की अमृत धारा प्रवेश कर जाएगी और प्रेम का अंकुर फूट जाएगा उसके अन्दर माया का नामों निशान भी नहीं रहेगा तारतम वाणी के ये कथन इस बात की पुश्टि करते हैं।

माया गई पोताने घेर, हवे आतम तूं
जाग्यानी केर ।
जब आया प्रेम सोहागी,
तो मोह जल लेहरां भागी ।
दैत कलिंगा मार के, सीधा होसी तत्काल ।
लीला मारी देख के, टालसी जम की जाल ।।

पूर्ण ब्रह्म परमात्मा की जाग्रत बुद्धि अज्ञान रूपी राक्षस का संहार करेगी उसी क्षण धनी को पाने में आने वाली सभी बाधाएं नश्ट हो जांएगी जब जाग्रत बुद्धि के ज्ञान के प्रकाश में संसार को परमधाम की लीला का बोध होगा तो जन्म मरण का बन्धन समाप्त हो जाएगा।

प्रेम निमंत्रणा **सेवा निमंत्रणा** **समर्पण निमंत्रणा**

मानखे देह अखण्ड फल पाइये, सो क्यों पाए के वृथा गमाइये।
ये तो अधखीन को अवसर, सो गमावत माझ निन्दर ।।

प्राणाधार प्यारे सुन्दरसाथ जी एवं धर्म–प्रेमी सज्जनों सादर प्रेम प्रणाम जी

आपको सूचित करते हुए अपार हर्ष हो रहा है कि अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी की पा एवं सतगुरु महाराज रामरतन दास जी की आशीर्वाद एवं धर्म–वीर जागनी रतन सरकार श्री जगदीश चन्द्र जी की प्रेरणा से **दिनांक 29/12/2019 से 02/01/2020 तक पंच– दिवसीय आत्म–जागृति शिविर का आयोजन उत्तर पूर्वांचल श्री निजानन्द जागनी सेवा समिति एवं आत्म–जागृति महिला मण्डल द्वारा श्री प्राणनाथ जी मन्दिर, शुकलाई (असम)** में होना निश्चित किया गया है।

आप सभी सुंदरसाथ जी एवं सम्पूर्ण धर्म–प्रेमी सज्जन अधिक से अधिक संख्या में पधारकर धर्म लाभ प्राप्त करें और अपने आत्म–जागृति के पथ पर चलने की प्रयास करें।

प्रमुख–वक्ता
परम–पूज्य श्री राजन स्वामीजी
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा, उत्तर प्रदेश

कार्यक्रम स्थल – श्री प्राणनाथ जी मन्दिर, शुकलाई

संपर्क नंबर
लोकनाथ जी– 09365749290
वालाजी निजानंदी– 07002453850
सूरज गुरुंग जी– 09101803546
बादल रिमाल जी– 091017 73656

जो भी सुन्दरसाथ इस कार्यक्रम में भाग लेने जा रहें है उनके लिये **आवश्यक सूचना** फ्लाइट से जानें वाले सुन्दरसाथ को गुवाहटी की फ्लाइट लेनी पड़ेगी। ट्रेन से आनेवाले के लिये आसाम के Rangiya (RNY) Station तक का टिकिट करना होगा।

प्राणाधार सुन्दरसाथ जी!

सादर प्रणाम जी!

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गौशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी ज्ञानपीठवासियों, विद्यार्थियों, आचार्यों एवं आगुन्तक अतिथियों में निशुल्क किया जाता है। आप सभी सुन्दरसाथ एवं उदारमना दानदाताओं से श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, रहने के लिए उत्तम व्यवस्था हो, उसके लिए आधुनिक ढ़ंग से गौशाला का निर्माण कार्य होने जा रहा है, इसके लिए जो भी सज्जन एवं सुन्दरसाथ दान देना चाहें ज्ञानपीठ उनका स्वागत करता है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं, और आप आने में असमर्थ हैं तो कृपया ज्ञानपीठ के खाते पर राशि जमा करके सूचित कर सकते हैं। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि आपके द्वारा दिया गया दान गौवों के संवर्धन में ही लगाया जायेगा।

।।धन्यवाद।।

विनम्र निवेदन

धाम धनी के लाडले सुन्दरसाथ जी! वर्तमान समय में श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ सरसावा में शिक्षण, साहित्यिक एवं निर्माण कार्य तेजी से चल रहा है। जिन सुन्दरसाथ ने इन कार्यों के लिए अपनी सेवाएं लिखवायी है या स्वतः उनके मन में सेवा करने की इच्छा है, कृपया वे इन खातों में धनराशि भेजने का कष्ट करें। इस बात का ध्यान रखा जाय कि जिस सेवा की धनराशि भेजी जा रही है, मात्र उसी खाते की C.B.S.A/C संख्या में भेजें।

प्रणाम जी

सेण्ट्रल बैंक ऑफ इण्डिया

1. खाता धारक का नाम–श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रष्ट
   खाता संख्या–3290805513
2. खाता धारक का नाम–श्री ज्ञानपीठ प्रकाशन
   खाता संख्या– 3290804553

पता–शाखा–सरसावा, सहारनपुर उ. प्र. 247232

MICR-Code - 247016005

IFSC CODE-CBIN0282531

सामान्य खाता संख्या
1335000100111916
पंजाब नेशनल बैंक
सलेमपुर (सहारनपुर) उ.प्र.
RTGS/NEFT IFS
CODE - PUNB0133500

साहित्य खाता संख्या
1335000100118751
पंजाब नेशनल बैंक
सलेमपुर (सहारनपुर) उ.प्र.
RTGS/NEFT IFS
CODE - PUNB0133500

भवन निमार्ण खाता संख्या
34971188767
भारतीय स्टैट बैंक
(11439) सरसावा, सहारनपुर
उत्तरप्रदेश, पिन- 247232
IFS CODE- SBIN0011439

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा से प्रकाशित साहित्यों की सूची

क्र. स.	ग्रन्थ का नाम	मूल्य	क्र. स.	ग्रन्थ का नाम	मूल्य
1.	श्री कुलजम स्वरूप (मूल)	700.00	36.	बोध मंजरी (नेपाली)	15.00
2.	श्री बीतक साहेब टीका	400.00	37.	बोध मंजरी (उड़िया)	15.00
3.	श्री रास टीका	150.00	38.	शाश्वत सत्य की ओर	15.00
4.	श्री प्रकाश टीका	300.00	39.	सत्य को बाटो (नेपाली)	15.00
5.	श्री कलश टीका	225.00	40.	संसार से परमधाम की ओर	20.00
6.	श्री खटरूती टीका	80.00	41.	श्री प्राणनाथ महिमा	20.00
7.	श्री किरन्तन टीका (हिन्दी)	300.00	42.	श्री ब्रह्मवाणी चर्चा	65.00
8.	श्री किरन्तन टीका (अंग्रेजी)	350.00	43.	निजानन्द संस्कार पद्धति	15.00
9.	श्री किरन्तन टीका (नेपाली)	300.00	44.	सेवा पूजा	30.00
10.	श्री खुलासा टीका	250.00	45.	मूल स्वरूप की ओर	80.00
11.	श्री सनंध टीका (अप्रकाशित)		46.	चितवनी	5.00
12.	श्री खिलवत टीका	180.00	47.	आर्ष ज्योति	120.00
13.	श्री परिक्रमा टीका	275.00	48.	तारतम के निर्झर	70.00
14.	श्री सागर टीका	170.00	49.	तारतम पीयूषम्	70.00
15.	श्री सिनगार टीका	300.00	50.	हमारी शाश्वत सम्पदा	60.00
16.	श्री सिन्धी टीका	150.00	51.	खाद्य परिशीलन	250.00
17.	श्री मारफत सागर टीका (अप्रकाशित)		52.	विनाश का प्रर्याय मांसाहार	60.00
18.	श्री क्यामत नामा टीका (अप्रकाशित)		53.	विराट नक्शा (केलेण्डर रूप में)	50.00
19.	श्री मुखवाणी संगीत	150.00	54.	सौवं क्यामतनामा	90.00
20.	विद्वददमनी	200.00	55.	अनमोल मोती	5.00
21.	पट दर्शन	200.00	56.	सागर के मोती	10.00
22.	धाम सुषमा	60.00	57.	नित्य पाठ	5.00
23.	जागो और जगाओ	100.00	58.	ये स्वर्णिम पल	10.00
24.	दोपहर का सूरज	60.00	59.	मुख्तार हिन्द	20.00
25.	प्रेम का चाँद	65.00	60.	शब–ए–मेयराज	15.00
26.	निजानन्द योग	60.00	61.	अफलातूनी इलम	20.00
27.	हमारी रहनी	50.00	62.	बुलन्द मुकदमा	40.00
28.	ब्रह्माण्ड रहस्य	40.00	63.	झूठ ही झूठ	60.00
29.	श्री मद्भागवत यथार्थम्	30.00	64.	यथार्थ दीपिका	30.00
30.	ध्यान की पुष्पांजली	70.00	65.	प्रश्नमाला	5.00
31.	कड़वे सच	50.00	66.	निजानन्द चित्रकथा	30.00
32.	तमस के पार (बड़ी)	40.00	67.	शेख जी मीर जी का बयान	20.00
33.	तमस के पार (छोटी)	20.00	68.	फरमान	30.00
34.	तमस के पार (पंजाबी)	40.00	69.	स्वास्थ्य के प्रहरी	30.00
35.	बोध मंजरी (हिन्दी)	15.00	70.	सत्यांजलि	40.00

सुभाषित वचन

- विवेक, वैराग्य, अभ्यास और श्रद्धा आत्मिक साधना के मूल आधार स्तंभ है।
- जब तक नाशवान् वस्तुओं में आसक्ति या सत्यता दिखेगी, तब तक परम सत्य का बोध नहीं हो सकता है।
- कमियां निकालना छोड़िए, प्रशंसा करने की आदत डालिए। प्रशंसा और प्रोत्साहन पाकर तो चींटी भी पहाड़ लाँघ जाया करती है।
- ज्ञान का अभ्यास न करने से, भोगों में आसक्त रहने से, चरित्र के नाश से, अभिमान के कारण दूसरों का तिरस्कार करने से, देवता भी पछताते हैं। मनुष्य तो क्या?

BOOK POST

RNI:UPHIN/2016/46009
RNP/SHN/18-2019-21

प्रकाशक
पू.श्री राजन स्वामी जी

प्रकाशन कार्यालय
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा, नकुड़ रोड, जिला–सहारनपुर (उ.प्र.)
पिन कोड–247232

सम्पादक
श्री एस. पी. आर्य
भूतपूर्व आई. ए. एस.

तारतम मंजरी पत्रिका के स्वामी
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट, सरसावा
जिला–सहारनपूर, दूरभाष–8650851010
अवतरित न होने पर कृपया इस पते पर लौटाये।
धन्यवाद

सेवा में,